गवाह नम्बर तीन

गवाह नम्बर तीन

गवाह नंबर तीन

विमल मित्र



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

जल्दबाजी में लिखी गई मेरी यह कहानी जब पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, मुझे जरा भी पसन्द नहीं आई थी। और फिर मेरी कौन-सी कहानी मेरी मनपसन्द होती ही है। छपने के बाद जब भी कोई अपनी कहानी पढने बैठा—जंची नहीं। सोचा—थोड़ा और मन लगाकर, थोड़ी और मेहनत से लिखता तो अच्छा रहता।

लेकिन बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मनुष्य के पास समय ही कहां है! मनुष्य का आज का धर्म हो गया है—आगे बढते चलो—सबको पीछे छोड़ते चलो—धक्का मारकर, चोट पहुंचाकर—किसी भी तरह बढ़ते चले जाओ। रुकने का समय नहीं, पीछे मुड़कर देखने का समय नहीं, दो क्षण सोचने के लिए भी किसीके पास वक्त नहीं—क्योंकि उन्हीं दो क्षणों में तुम्हारे पीछे के वे लोग तुमसे आगे बढ जाएंगे।

इसीलिए कभी-कभी मैं अपने लिए सोचता हूं। दूसरों के साथ दौड़ने की इस प्रतियोगिता में क्या मैं भी उतर पड़ा हूं?

पर साहित्य तो समय का फल है, जमीन को भी कुछ दिनों के विश्राम की जरूरत होती है, उसे अवसर दिया जाता है—तभी फसल अच्छी होती है। मैं इन बातों को जानता हूं, फिर भी आजकल क्यों इतना लिखता हू? मन को जरा भी आराम नहीं दे पाता!

सम्भवतः यही इस व्यस्त युग का अभिशाप है। मैं भी उस अभिशाप को ही भोग रहा हूं। नहीं तो सरयू को लेकर जो कहानी लिखी है, वह और सोच-समझकर, समय लेकर लिखता तो बात बनती।

ताज्जुब है! सरयू की कहानी इतनी जल्दी मुझे लिखनी पड़ेगी, यह मैंने कभी नहीं सोचा था। हमारे जीवन में प्रतिदिन सम्पादकों और प्रकाशकों के तकाजे, सांसारिक और वास्तविक जीवन के तकाजे, बाहर से, अन्दर से—चारों तरफ से तकाजों का पाप—जीवन को दूभर बना देता है। इन तकाजों के पीछे केवल 'प्रयोजन' रहता है—प्यार नहीं।

लेकिन साहित्य तो प्रयोजन पर निर्भर नहीं करता। साहित्य
फसल है और प्रीति प्रयोजन की परवाह नहीं करती। उसे तो समय
हुए, गहराई तक पहुंचने के लिए। पर साहित्य सृष्टि के लिए वह 'समय'
ई नहीं देना चाहता। न तो सम्पादक राज़ी होते हैं और न प्रकाशक, और
ही खुद लेखक। कोई राज़ी नहीं होता, इसीलिए सरयू और निशिकान्त को
कर लिखी गई कहानी भी शायद गहराई तक नहीं पहुंची है। सरयू की जो
बात मैं आज लिख रहा हूं—वह घटना है बहुत पुरानी। सोचा था कभी सही
अर्थ में जब समय मिलेगा तब लिखूंगा।

लेकिन समय ! अवसर ! इन शब्दों को तो मैं भूल ही चुका हूं। केवल
ज़रूरत और ज़रूरत। ज़रूरत की गरज़ ही जीवन की प्रमुख गरज़ है।

ख़ैर, कभी मौका मिला तो इसपर भी कुछ लिखूंगा। आज तो सरयू
और निशिकान्त की ही बात बताता हूं, वह भी इसीलिए कि उस दिन सड़क
पर अचानक निशिकान्त मिल गया।

मैं पहले तो उसे पहचान ही नहीं पाया। कितना बदल चुका था निशि-
कान्त।

—कुछ पैसे देंगे सर ?

—पैसे ?

इस तरह से मांगने वालों की कलकत्ता में कोई कमी नहीं।

—दीजिए न सर ! बड़ी मुसीबत में पड़ा हूं। नौकरी-चाकरी है नहीं।
बच्चों के साथ उपवास चल रहा है। थोड़ा ही सही, जितना हो सके दीजिए।

मैं हैरान होकर उसे देख रहा था। कुछ शक भी हो रहा था। आखिर
पूछ ही बैठा—तुम निशिकान्त हो न ?

शायद निशिकान्त ने भी मुझे पहचान लिया था। दूर खिसकने की कोशि
करते ही मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। बोला—तुम निशिकान्त ही हो न
निशिकान्त पहले तो मानने को तैयार नहीं हुआ, पर मैंने भी उसे
बोलने का मौका नहीं दिया। बोला—झूठ बोलने की कोशिश मत क
अभी तक तुम्हारी आदत सुधरी नहीं। बोलो, कहां रहते हो ?

निशिकान्त अपने को संभाल नहीं पाया। रो पड़ा, सिसक-सिसकक

चुप रहो निशिकान्त। बस करो।

-- उसके बाद उसे लेकर मैं सड़क के किनारे एक रेस्तरां में घुसा। सोचा कुछ खिला दूं। कुछ खा लेने पर शायद स्वस्थ लगने लगेगा। साथ-साथ मुझे वह घटना भी याद आने लगी। खून का वह मुकदमा। उसे बैठाकर मैंने होटल के बेयरे को कुछ लाने के लिए कहा और मैं उसे देखता रहा। सोचता रहा। सचमुच ही यह क्या वही निशिकान्त है। उस दिन अगर वह घटना नहीं घटती तो निशिकान्त से मेरा परिचय भी कभी नहीं होता। मैं उस मुकदमे में तीसरा गवाह था। मुकदमा कुछ विचित्र और जटिल-सा था। फिर भी मनुष्य के जीवन में चाहे कितनी भी जटिलता क्यों न हो, मनुष्य की बनाई अदालत उस जटिल जीवन की ऐंठनों को खोलने के बजाय उसे और भी जटिल बना देती है। मैं कैसे इस मुकदमे में तीसरा गवाह बना इसका भी एक खास कारण था।

कारण यह था कि मैं इस सारे मामले को पूरी तरह जानता था।

आज याद आता है, सरकारी वकील ने मुझसे पूछा था—क्या आप इस आसामी को जानते हैं ?

उत्तर में मैंने 'हां' कहा था।

—आपने इसे पहले भी कभी देखा था ?

—जी।

—अपनी राय में आप आसामी को अपराधी मानते हैं या नहीं ?

—मैं उसे अपराधी मानता हूं।

—क्यों ? सरकारी वकील ने जिरह शुरू की।

इसके जवाब में मैंने क्या कहा था—उसे कहने के लिए मुझे पाठकों को शुरू से पूरा इतिहास बताना पड़ेगा। वही बताता हूं।

व्यक्तिगत रूप से मेरी धारणा रही है कि प्रत्येक कलात्मक रचना के पीछे एक सामाजिक नीतिबोध रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य को नैतिक शिक्षा देना ही साहित्य का धर्म है, क्योंकि ऐसा होने से तो वह या तो धर्म-पुस्तक बन जाएगा या फिर पाठ्य पुस्तक। साहित्य की जो अधिष्ठात्री देवी है वह धर्म नहीं मानती, शिक्षा भी नहीं मानती। वह केवल एक ही चीज मानती है। और वह है रस।

इस रस का क्या अर्थ है, क्या व्याख्या है, यह किसी भी ग्रन्थ में नहीं

मिलता। दुनिया में ऐसा कोई विश्वविद्यालय भी नहीं, जहां धरना देने पर इस रस की डिग्री मिल सके। इस रस का स्वाद तो जिन्होंने लिया है केवल वही इसका यथार्थ भी समझ पाते हैं। यह भाषण देकर नहीं समझाया जा सकता। किताबें लिखकर भी इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, और न ही इसे औषध की तरह जबरन घोंटा जा सकता है। यह जो रस है, इसका कोई देशभेद, जातिभेद या युगभेद नहीं। यह तो अनादि, अनन्त, अव्यय, अक्षय, अपार्थिव एक उपलब्धि है। परन्तु अपार्थिव होकर भी इसका मूल पृथ्वी के मनुष्य के हृदय में रहता है। मानव-मन की गहराई तक इसकी जड़ें फैली रहती हैं। रस के सम्बन्ध में इतना कुछ कहने का भी एक कारण है।

अगर यह कारण बता दूं तो आप समझ जाएंगे कि मैं क्यों रस के लिए इतना बक रहा हूं।

कुछ दिन पहले अर्थात् बहुत वर्षों पहले मैं एक ऐसी नौकरी करता था जिसके कारण मुझे करीब-करीब सारे हिन्दुस्तान में रेल से सफर करना पड़ता था। खुलकर ही बता देता हूं। पुलिस की नौकरी थी मेरी।

पुलिस की नौकरी तो करता था पर बाहर वालों के लिए यह जानना मुश्किल था कि मैं पुलिस का कोई आदमी हूं। यह तो सभी जानते हैं कि पुलिस भी तरह-तरह की होती है। जल-पुलिस, रेल-पुलिस, और साधारण लाल पगड़ी वाली पुलिस। लेकिन इन सबके अलावा भी एक और तरह की पुलिस होती है। उसके आदमियों को देखने पर यह समझना मुश्किल है कि वे पुलिस में हैं क्योंकि आपकी-हमारी तरह वे भी ट्रेनों, स्टीमरों और सड़कों पर साधारण पोशाक पहनकर आम आदमी की तरह घूमते हैं और मौका पाकर अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं। मैं भी ऐसी ही पुलिस का आदमी था। इसी तरह एक दिन अचानक एक महिला मेरे पास आकर बोली—देखिए, मेरा एक काम कर देंगे?

मैं थोड़ा हैरान-सा हो गया। महिला बिल्कुल अनजान थी। उम्र कच्ची थी। देखने में अच्छी थी। मोकामाघाट के प्लेटफार्म पर ट्रेन की प्रतीक्षा में कई लोगों में मैं भी बैठा था। कहीं-कहीं थोड़ा अंधेरा-सा था। कलकत्ता जाने वाली गाड़ी आने ही वाली थी। मुझे जाना भी वहीं था।

मैंने महिला की तरफ देखा। पुलिस का आदमी भले ही हो—दया-ममता

तो हर मनुष्य में होती ही है। पूछा—क्या काम है, कहिए ?

वह महिला अत्यन्त ही भद्र ढंग से बोली—देखिए, मैं चाय पीने जा रही हूं। तुरन्त वापस आ जाऊंगी। क्या मेरा यह सूटकेस अपने पास रख सकेंगे ?

सूटकेस रखने में भला क्या आपत्ति हो सकती थी ? इसलिए बोला—छोड़ जाइए, पर ज्यादा देर नहीं कीजिएगा।

वह बोली—मैं गई और आई। बिल्कुल देर नहीं होगी।

मैं चुपचाप सामान के आसपास चहलकदमी करने लगा। ट्रेन की प्रतीक्षा में अधीर भी हो रहा था। सोच रहा था रिजर्वेशन तो है ही—बस, गाड़ी आते ही अपनी बर्थ पर चैन से सो जाऊंगा। लेकिन काफी समय बीत चुका, वह महिला नहीं आई। मैं सोच ही रहा था कि चाय की दुकान तक जाकर देख आऊं। पता नहीं चाय या उसके साथ दो बिस्कुट खाने में उसे इतनी देर क्यों लग रही थी। वास्तव में मैं चिन्ता में पड़ गया था कि अगर अन्त तक वह नहीं लौटी, तब क्या होगा ? न जाने क्यों मेरे मन में एक अजीब-सा शक पैदा हो रहा था। इसी बीच एक तमाशा हुआ।

पुलिस की एक छोटी टुकड़ी मेरे पास आई। थोड़ी देर पहले आबकारी-पुलिस के ये लोग यों ही प्लेटफार्म पर घूम-फिर रहे थे। सभी के माल पर इनकी कड़ी नजर थी। किसीपर शक होने से उनके बक्सों को खोलकर भी देख रहे थे।

मेरे पास भी आकर उन्होंने पूछा—सूटकेस के अन्दर क्या है ?

मैंने कहा—मेरे कपड़े-लत्ते वगैरह।

पुलिस की उस टुकड़ी के जो बड़े साहब थे वे जिस माल पर सन्देह होता, उसपर अपनी छड़ी से ठोककर पूछा-ताछी करते। मुझसे भी उन्होंने पूछा—और यह ?

—मेरा पोर्टफोलियो है।

—उसमें है क्या ?

—आफिस के कागजात वगैरह।

—बैग खोलकर दिखलाइए।

मैं थोड़ा नाराज हुआ। बोला—आप मुझपर शक कर रहे हैं !

वह बोले—हम एक्साइज़ डिपार्टमेण्ट के आदमी हैं। और मैं आबकारी-
ग का इन्स्पेक्टर हूं, इसलिए देखना चाहता हूं कि इसमें कोई गैरकानूनी
है या नहीं ?

मैंने कहा—अवश्य देखिए ! इतना कहकर मैंने अपना पोर्टफोलियो खोल
या। वह समझ गए कि मैं भी सरकारी काम करता हूं इसलिए मुझे और
धिक परेशान नहीं किया। मुझे छोड़ वह मेरे पास ही में बैठे एक सज्जन
ो ले बैठे। वह बेचारे सपरिवार ट्रेन की प्रतीक्षा में बैठे थे। बच्चों के साथ
वह परेशान-से दिखाई दे रहे थे—सम्भवतः सोच रहे थे कि ट्रेन पर सही-
सलामत सबके साथ चढ़ पाएंगे या नहीं। ढलती उम्र के थे। कोई सयाना
लड़का या मददगार भी साथ में नहीं था।

उनसे भी वही सवाल पूछा गया।

—आपके ट्रंक में क्या है ?

केवल ट्रंक ही नहीं, बिस्तरबन्द, टिफिनबक्स, सूटकेस सब कुछ तितर-
बितर कर देखा जाने लगा। शायद यह सज्जन सपरिवार पुण्य कमाने के लिए
नेपाल में पशुपतिनाथजी का दर्शन करने निकले थे। पर ये पुलिस वाले भी
किसीको छोड़ते नहीं। वह प्रौढ़ सज्जन अत्यन्त घबराकर सारा सामान खोल-
खोलकर दिखा रहे थे। सारा कुछ देखकर तसल्ली से जैसे ही इन्स्पेक्टर
साहब आगे बढ़े कि अचानक मेरे पास में पड़े महिला के उस सूटकेस पर उनकी
र पड़ गई।

पूछा—यह सूटकेस किसका है ? क्या है इसमें ?

सभी यात्री अपना-अपना सामान देखने लगे। सब अचरज में पड़े थे—
आखिर यह प्रश्न पूछा किससे जा रहा है। इन्स्पेक्टर साहब ने बेंत की छड़ी
से सूटकेस पर चोट करते हुए पूछा—इसे तो खोलकर नहीं दिखाया गया।
इसे खोलिए।

एक बूढ़े सज्जन पास में ही बैठे थे। रुआंसे-से होकर बोले—यह मेर
सूटकेस नहीं है। यह उनका—कहकर उंगली उठाकर मुझे दिखा दिया।

इन्स्पेक्टर अब मेरी तरफ मुड़े। पूछा—यह सूटकेस आपका है ?

मैंने कहा—नहीं।

पास बैठे कई लोगों से उन्होंने पूछा कि यह सूटकेस उनमे

किसीका है या नहीं। पर वह सूटकेस उनमें से किसीका था ही नहीं, तो वे यह स्वीकार कैसे करते ? अब मैंने आगे बढ़कर कहा—यह सूटकेस एक महिला का है। वह इसे मेरे पास छोड़कर चाय पीने के लिए गई हैं—अभी लौट आएगी।

—कहां चाय पीने गई हैं ?

मैंने कहा—वो तो मैं नहीं बता सकता। पर कह गई थीं कि चाय की स्टाल पर जा रही है। सूटकेस चोरी न हो जाए, इसलिए मुझे ध्यान रखने के लिए कह गई।

इन्स्पेक्टर साहब ने एक कान्स्टेबल को चाय की स्टाल पर भेजा और मुझसे पूछा—कैसी थी वह ? कितनी उम्र की होगी ?

मैंने जैसा देखा था समझा था, वर्णन कर दिया।

कान्स्टेबल उसी आधार पर उसे ढूंढने निकल पड़ा, लेकिन उल्टे पांव लौटकर उसने बताया कि चाय की स्टाल पर या आसपास किसी महिला को चाय पीते हुए स्टाल वालों ने देखा ही नहीं। और सच में चाय पीने की फुर्सत ही उस समय किसको थी। सबको ट्रेन की जल्दी थी।

एक कान्स्टेबल को मेरे पास छोड़कर इन्स्पेक्टर बाकी यात्रियों के माल को परखने लगा। मैंने भी चारों तरफ नजर दौड़ाई, पर वह कहीं भी नहीं दिखाई पड़ी। ट्रेन आने का वक्त हो चुका था। इन्स्पेक्टर साहब ने लौटकर दुबारा मुझसे पूछा—कहां गई आपकी वह महिला ?

—मालूम नहीं। मुझे तो अभी तक दिखाई नहीं दी है। कहकर तो गई थी कि चाय पीकर तुरन्त लौट आएगी।

इन्स्पेक्टर को मुझपर शक हो गया। उन्होंने थोड़ी कड़ाई से कहा—यदि सूटकेस वाकई दूसरे का होता तो वह अवश्य लौटता। असल में यह आप ही का सूटकेस है। इसे खोलिए और दिखलाइए कि इसमें क्या है ?

मेरा भी क्रोध बढ़ रहा था। बोला—मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु…

इन्स्पेक्टर बोला—आप अपना नाम-धाम और परिचय भी बतलाइए। मेरे साथ आपको थाने चलना पड़ेगा। इतना कुछ कहकर वह मुझे डराने की कोशिश कर रहे थे।

मैं अपना परिचय और न छुपा सका। जेब से आइडेन्टिटी कार्ड फोटो

सहित निकालकर उन्हें दिखाया। कार्ड देखकर वह चौंक पड़े। बोले—आप सी० बी० आई० के आदमी है। पहले क्यों नहीं बताया ?

मैंने कहा—पहले आपने मेरा परिचय पूछा ही कहां था ?

इन्स्पेक्टर साहब बोले—मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यह किसी स्मगलर की बदमाशी है। अगर हम इसका ताला तोड़ डालें तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?

मैंने कहा—बिल्कुल नहीं। जिसकी चीज़ है जब उसे ही परवाह नहीं तब आप इस सूटकेस को लेकर कुछ भी कर सकते हैं। मैं आपत्ति करूंगा भी क्यों ? और आप मेरी आपत्ति सुनेंगे भी क्यों ?

अन्त में सूटकेस का ताला तोड़ा गया। कुछ साड़ियां, ब्लाउज़, तौलिये आदि थे। और उन सबके नीचे गांजा भरा हुआ था।

सूटकेस को टूटते देखकर बाकी पैसेंजरों ने भी भीड़ लगा दी। सभी गांजा देखकर हैरान हो रहे थे। मैं तो सर्वाधिक हैरान था, क्योंकि खुद पुलिस-विभाग का आदमी होकर भी मैंने उस महिला पर शक नहीं किया—यह मेरी नालायकी थी।

इन्स्पेक्टर मेरी तरफ देखकर बोला—आपकी कोई गलती नहीं है। इस लाइन में हमेशा ही ऐसा होता रहता है। खासकर जिस महिला के लिए आप बोल रहे थे, हमें उसकी तलाश बहुत दिनों से है···पकड़ में आती ही नहीं।—अन्त में वह सूटकेस लेकर चल पड़े।

ट्रेन आ चुकी थी। दूसरे यात्रियों के साथ मैं भी ट्रेन पर सवार हो गया और दूसरे दिन कलकत्ता पहुंच गया। वह महिला कौन थी, नेपाल से इतना गांजा लेकर क्यों आ रही थी···उसके पीछे कोई ऐसा-वैसा दल था या नहीं···मैं कुछ भी नहीं जान पाया।

२

ये सारी बातें बहुत पुरानी हैं। आज इतने दिनों के बाद चाय की दुकान पर निशिकान्त के साथ बैठकर उसे ही देख रहा था। उसीके बारे में सोच

रहा था। पक्का शराबी था निशिकान्त पर आज उसका चेहरा बिल्कुल ही बदला हुआ लगता था। उस दिन निशिकान्त से किए दुर्व्यवहार के लिए मुझे दुख हो रहा था।

पर निशिकान्त की नजर किसी चीज पर नहीं थी। वह मन लगाकर खाता रहा—चॉप, कटलेट, आमलेट, केक। मानो बहुत दिनों से अच्छा कुछ खाया हो न हो।

मैंने पूछा—एक कटलेट और लोगे निशिकान्त?

वह निर्विकार भाव से बोला—हां, ले सकता हूं।

मैंने बेयरे को बुलाकर कहा—एक गरम चिकेन कटलेट बनाकर ले आओ।

बेयरा चला गया। निशिकान्त खाते-खाते बोला—असली घी मे तला हुआ कटलेट है। इस दुकान पर मैंने पहले भी कई बार खाया है। उसके बाद मुझसे बोला—आप भी एक कटलेट खाइए न?

मैंने कहा—नहीं! अभी तुरन्त खाकर ही घर से चला था। तुम खाओ।

बेयरा कटलेट दे गया। गरम धुआं निकल रहा था। मुझे लगा खाते-खाते भी निशिकान्त की जीभ से लार टपक रही है।

मेरी इच्छा हो रही थी—निशिकान्त जी भरकर खाए। बहुत तकलीफें झेली हैं उसने जीवन में। अभी कम-से-कम थोड़ी तृप्ति से खा ले।

निशिकान्त खा रहा था और मैं सोच रहा था। उन दिनों की बात सोचते ही सारी पुरानी बातें याद आ गईं। मोकामाघाट स्टेशन पर गांजे से भरे सूटकेस के पकड़े जाने की बात। कुछ ही दिनों बाद एक और तमाशा हुआ और उस तमाशे के बाद मेरे जीने का ढंग ही बिल्कुल बदल गया।

उन्हीं दिनों मैंने एक किताब लिखी थी। उसकी इतनी प्रशंसा हुई कि मैं विख्यात हो गया, हालांकि कुछ लोगों ने किताब की बुरी समीक्षा भी की थी। जिन्होंने ऐसी समीक्षा की, उन्होंने मेरी किताब के पन्ने तक नहीं उलटे। किताब के अन्दर मैंने क्या ऊल-जलूल भरा था, इसे देखने की भी चेष्टा नहीं की। केवल सोचा साहित्यिक दुनिया में यह कहां से टपक पड़ा? मेरी थाली का हिस्सेदार। मैं तो निर्विकार बन गया था, और फिर करता भी क्या? उनकी समालोचना से मैं विचलित हो जाऊं, उनकी इस भावना को मैं भांप

गया था। इसीलिए उनकी सारी कोशिशों के वावजूद मैं निर्विकार ही बना रहा। साथ ही सभी दोस्तों और दुश्मनों—सभीसे अलग रहकर और भी अच्छी तरह लिखने की चेष्टा में डूबा रहा और पुलिस की नौकरी छोड़ दी। केवल नौकरी ही नहीं छोड़ी, कलकत्ता के कोलाहल से दूर एक उपनगर में मैंने एक फ्लैट किराये पर ले लिया। शहर और निन्दा से दूर इस एकान्त जगह में एक बड़ा-सा उपन्यास लिखने में मग्न हो गया।

मैंने सोच लिया था कि जीने के लिए दूसरे की नौकरी नहीं करूंगा। और अगर किसीका दासत्व करना ही है तो फिर अपना ही करूंगा। इसमें कष्ट तो उठाना पड़ता है, पर बदले में अपरिसीम आनन्द की उपलब्धि होती है। उसी दिन मैंने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने लेखन पर ही जीऊंगा या मरूंगा। नौकरी करके भी लिखा जा सकता है—लेकिन सच्ची साहित्यिक रचना के लिए दो नावों पर पैर रखकर चलना मृत्यु की ओर बढ़ना है।

जिस मकान में मैं रहता था उसके पास ही गंगा नदी थी। ज्यादा चौड़ी नहीं। दोनों किनारों पर बहुत-से पेड़ थे।

दिन-भर काम करने के बाद गंगा के किनारे बहुत दूर तक घूमने निकल पड़ता।

सारा दिन लिखने के बाद इस कदर थक जाता कि शाम को घर पर टिकना मुश्किल हो जाता। वह समय मेरे विश्राम का होता, और मेरे विश्राम का अर्थ था—फुटपाथ पर दूर तक पैदल चलना—सीधा बस-रोड के चौराहे तक। यहां थोड़ी भीड़ रहती। कुछ दुकानें भी थीं। सब्जी वगैरह की दुकानें फुटपाथ पर ही थीं। फिर बाल काटने का सैलून, मिठाई और पान-बीड़ी-सिगरेट की दुकान, जहां विविध भारती से हिन्दी-फिल्मों के गाने ज़ोर-ज़ोर से गूंजते। उसीके आसपास लम्बी ज़ुल्फों वाले लड़कों का जमघट रहता।

इन सारी चीजों को देखता हुआ मैं टहलता। कई बार सड़क चलते राहगीरों का तर्क-वितर्क भी सुनने को मिल जाता। इनका विषय अधिकतर हिन्दी-फिल्म स्टारों का प्राइवेट जीवन ही होता।

अच्छा ही लगता था।

इसी तरह दिन कट रहे थे। अचानक एक दिन देखा कि गंगा के

किनारे एक साधु सारे अंग पर विभूति लगाए बैठा है और उसके चारों तरफ कुछ भीड़ इकट्ठी हो गई है। सामने धूनी रमी थी, धुआं भी उठ रहा था। फिर देखा चौराहे की दुकान से साधु बाबा के लिए चाय आ रही थी। चलते-चलते मैं भी वहां आकर रुक गया। कुतूहल भी था। यह महात्मा एकाएक कैसे आ गया? कब आया, कहां खाता है, कहां सोता है—मन में बहुत-से प्रश्न उठ रहे थे।

सामने बैठे लोग साधु से तरह-तरह के प्रश्न भी कर रहे थे। कोई कहता—बाबा, कृपा कीजिए।

कैसी कृपा, कौन-सी कृपा, कृपा क्यों की जाएगी। मैं नहीं समझ सका। और वस्तुतः कृपा करने की कोई अलौकिक क्षमता साधुबाबा के पास है, इसका कम-से-कम मुझे तो कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ा। किसी भक्त से जाकर पूछा—महात्माजी कहां से आए हैं?

—हिमालय से।

सुनकर मैं चकित रह गया।

संसार मे इतनी जगह के रहते हुए महात्माजी हिमालय से कलकत्ता में इसी जगह क्यों आए?

लेकिन जहां भक्ति गाढ़ी हो, युक्ति तुच्छ हो जाती है। भक्ति के स्रोत मे युक्ति और तर्क बिल्कुल बह जाते हैं। फिर भी—मनुष्य के समाज में जब भी कोई व्यतिक्रम दिखाई पड़ता है तब कुतूहल होता ही है। मैंने फिर पूछा—महात्माजी भोजन क्या करते हैं?

भक्त बोला—महात्माजी कुछ नही खाते।

—कुछ नहीं खाए तो मनुष्य जी नही सकता। कुछ तो खाते ही होंगे?

भक्त बोला—नही सर। कल से मैं चेष्टा कर रहा हूं। चौराहे की दुकान से रसगुल्ले, पेड़े और फल भी मंगवाए। पर गुरुजी ने कुछ भी मुंह मे नही रखा। सब अपने हाथों से हम लोगों को बांट दिया।

—लेकिन जो चाय उनको दी गई?

भक्त बोला—गुरुजी चाय भी नहीं पीएंगे। उनके सामने पड़ी रहेगी। अन्त मे हम ही लोगों में से कोई उसे पीएगा। रोज ऐसा ही होता है।

—महात्माजी सोते भी नहीं क्या ? मैंने कुतूहलवश पूछ ही लिया।

—कल रात के दो बजे तक तो मैं स्वयं ही जगा बैठा था। बाबा एक ही मुद्रा में बैठे रहे। बाबा में अलौकिक क्षमता है।

मैं देख रहा था—साधुजी पद्मासन की मुद्रा में बैठे थे। सामने भक्तों की भीड़ थी। पर महात्माजी को किसी चीज़ का ध्यान नहीं था। केवल इकट्ठी भीड़ को अपलक देख रहे थे। मैं आखिर कितनी देर रुकता ? धीरे-धीरे अपने घर की तरफ चल पड़ा।

उसके बाद से रोज़ उसी रास्ते से जाने लगा। रोज़ एक ही दृश्य देखने को मिलता। वही एक चेहरा। सामने एक त्रिशूल। पहले यह नहीं था। त्रिशूल के फलक पर सिन्दूर पुता था। सुना कि किसी भक्त ने बाजार से अपने पैसों से मंगवाकर दिया था।

मैं भी नियम से रोज़ गंगा के किनारे-किनारे उतनी दूर तक चला जाता। देखता कि दिन-पर-दिन उनके भक्तों की संख्या बढ़ रही थी। पहले दिन तो चार-पांच ही लोग दिखाई पड़े थे। दूसरे दिन से पन्द्रह-बीस इकट्ठे होने लगे। चौराहे पर से कुछ लड़के-बच्चे भी आने लगे। वे साधु बाबा को घेरकर गोल चक्कर बनाकर बैठे रहते और उनके चेहरे को चुप-चाप निहारते रहते। महात्माजी ध्यानस्थ उदास नयनों से सबको देखते। थोड़े दिनों के बाद बरसात का मौसम आया। मैंने देखा, साधुबाबा के किसी चेले ने त्रिशूल के फलक पर एक छाता बांध दिया था। और उस खुले छाते के नीचे साधुबाबा निर्विकार हो पद्मासन लगाए बैठे रहते। फिर एक दिन रातोंरात एक छप्पर छाया गया। चारों तरफ कोई दीवाल नहीं थी, केवल धूप और पानी से भक्तों को बचने-बचाने के लिए किसी पैसे वाले शिष्य ने यह छप्पर बनवा दिया था। फिर हिन्दी-भजन भी साधु बाबा के अखाड़े पर जोर-ज़ोर से बजने लगे। धीरे-धीरे जो लोग चौराहे के बड़े मकान के बरामदे पर या फिर चाय की दुकान की लकड़ी की बेंच पर बैठे फिल्मी गीत सुना करते थे, वे भी इस अखाड़े पर जुटने लगे। फिल्मी गीत छोड़ पैण्ट-शर्ट धारी लोग भी सबके साथ सुर मिलाकर भजन गाने लगे।

किनारे से जाते हुए एक दिन मैं अपने को रोक नहीं सका। सुगन्धित

धूप की सुगन्ध आ रही थी। मैं उत्सुकतावश रुक गया। देखा, साधुबाबा के सामने सिन्दूर से लिपटी एक मूर्ति की भी प्रतिष्ठा हो गई थी। करताल बज रहा था, भजन चल रहा था। भजन खत्म होने पर मैं वापस आ ही रहा था कि एक महिला मेरे सामने आई। लाल किनारे की साड़ी। गोरा रंग। सिन्दूर की एक बिन्दी।

पत्ते में लपेटी किसी चीज को निकालकर बोली—थोड़ा प्रसाद नहीं लीजिएगा?

गले की आवाज सुनकर मैं चौंक पड़ा। आवाज बड़ी ही परिचित-सी लगी। इसे कहीं जरूर सुन चुका हूं। मैंने महिला की तरफ अच्छी तरह से देखा—लगा इन्हें कहीं देखा भी है।

तब तक मैं प्रसाद ले चुका था।

प्रसाद के नाम पर कोई कीमती चीज नहीं थी।

हलुआ था। थोड़ा-सा मुह में डालकर महात्माजी का सम्मान रखा। मुझे प्रसाद देने के बाद वह महिला दूसरे भक्तों के बीच प्रसाद बांटने लगी।

मेरे और ठहरने का कोई कारण नहीं था। मैं चलने लगा। चलते-चलते बार-बार लग रहा था इस महिला को मैंने जरूर कहीं देखा है। फिर सोचते-सोचते अचानक याद भी आ गया।

मनुष्य की स्मरणशक्ति भी बड़ी अजीब चीज है। एक छोटी-सी खोपड़ी में कितना कुछ है—सोचकर हैरानी होती है। कब की घटी कोई घटना अचानक नींद में याद आ जाती है और फिर जगने पर सोचता हूं कि ऐसी बेतुकी बात दिमाग में आई कैसे? एक बार किसी स्टेशन पर कोई चीज खरीदकर पैसे देने के पहले ही गाड़ी चल पड़ी। बैग से जब तक पैसे निकालूं, ट्रेन प्लेटफार्म को बहुत पीछे छोड़ चुकी थी। चीज दो-चार पैसों की थी, लेकिन बात मन में चुभ गई। उस गरीब आदमी ने पैसे के अभाव में हो सकता है मुझे गाली दी हो, अभिशाप भी दिया हो। उस स्टेशन से दुबारा गुजरने का मौका मुझे नहीं मिला। वे पैसे मैं नहीं लौटा सका।

यह घटना भी कुछ उसी तरह की है।

घर लौटकर खाना वगैरह खाकर रात को सो गया। जैसे ही विस्तर
र लेटा, एकाएक सब कुछ याद आ गया। अरे! यह तो वही महिला है,
जिससे मोकामाघाट स्टेशन के प्लेटफार्म पर भेंट हुई थी। बात कितनी
पुरानी हो गई थी। फिर भी चेहरा कोई खास नहीं बदला था। गले की
वही आवाज़।

सोचते-सोचते पूरी घटना आंखों के सामने फिर से घूम गई। मेरे
ज़िम्मे सूटकेस सम्हलवाकर चाय पीने का बहाना बनाकर गायब हो जाना,
इन्स्पेक्टर के साथ मेरी बातचीत और फिर सूटकेस के ताले को तोड़ने के
बाद उसके अन्दर से ढेर-सा गांजा। यह तो वही महिला है। वह इसीका
तमाशा तो था। लेकिन इतने वर्षों के बाद यह यहां कैसे आई? और फिर
उसकी भेंट मुझीसे होनी थी? रात को काफी देर तक सोचता रहा, फिर
भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका।

दूसरे दिन शाम को मैं फिर वहां गया। सोचा था, यहां तो उससे भें
होगी ही।

भीड़ आज भी काफी थी। भजन हो रहा था। प्रसाद भी बां
गया—पहले दिन की ही तरह। मैं चारों तरफ उसी महिला की खोज
नजर दौड़ा रहा था। लेकिन वह दिखी नहीं।

उत्सव चल ही रहा था कि मैं वापस आ गया। व्यर्थ में वहां रु
भी क्यों? भक्ति में मेरी कभी कोई आस्था नहीं रही। आज भी
केवल कुतूहलवश वहां गया था। वहां से हटकर रोज़ की तरह मैंने
सान्ध्य-भ्रमण की ओर ध्यान दिया।

२

नौकरी छोड़ने के बाद से मेरी ख्याति तो उतनी नहीं बढ़ी प
हजार गुना बढ़ गया था। नौकरी में एक बात बड़े मज़े की है
व्यक्ति को खुश रखने से काम चल जाता है, लेकिन लेखक की
कुछ और ही है। एक ओर तो वह स्वयं मालिक है और दूसरी

सभी पाठकगण उसके मालिक हो जाते हैं।

इसलिए बाहर के लोगों से थोड़ा मेल-जोल रखने पर भी मैं स्वयं में ही व्यस्त रहता। बाहर या घर मैं निस्संग था। अकेला था।

ऐसे ही एक दिन मैं अपने काम मे उलझा हुआ था कि कानाई, मेरा नौकर आकर बोला—आपसे कोई महिला मिलना चाहती है।

मैंने पूछा—मेरे पास महिला क्या करने आई है ?

—किसी पत्रिका से आई है ?

मैं थोड़ा नाराज भी हुआ। क्योंकि कानाई को मैंने कह रखा था कि जब-तब जिस-तिसको मेरे सामने न आने दे।

खैर क्या करता ? बोला—ले आओ उस महिला को।

थोड़ी ही देर मे महिला आई। मैं अचरज से देखता ही रह गया। यह वही थी। वही—जिसे साधुबाबा के अखाड़े पर देखा था। मैंने पूछा—कहिए, क्या बात है ?

महिला बोली—आप हमारे ही मुहल्ले में रहते हैं। महात्माजी का आश्रम आपने देखा होगा। यहां के हम सभी निवासी मिलकर आश्रम को पक्का बनवाना चाहते हैं ताकि धूप और पानी मे भक्तों को तकलीफ न हो। इसीलिए. इस कार्य के लिए आपसे चन्दा मागने आई हू। जितनी भी आपकी श्रद्धा हो उतना ही अपनी खुशी से दीजिए।

मैं महिला को अपलक देख रहा था। मुझे उसके सामने बैठकर सारी पुरानी बातें याद आ रही थी। वही सूटकेस, उसका गायब हो जाना, पुलिस को चकमा देना, चाय का बहाना...।

मैं देख रहा था वह बड़ी अच्छी लग रही थी। ढंग मे कपड़े पहने थी। कहीं कोई अपवित्रता का नामोनिशान नहीं था।

महिला फिर बोली—आपपर कोई जुल्म नहीं कर रही हूं। आपकी जो भी इच्छा हो, दे सकते हैं।

मैंने पूछा—इस चन्दे को मांगने में आपका क्या स्वार्थ है ?

—मेरा भला क्या स्वार्थ हो सकता है ? भगवान की सेवा है—यही बड़ी बात है। घर-गृहस्थी के काम-काज के बाद समय ज्यादा मिल नहीं पाता, इसलिए थोड़ा-बहुत समय ही आश्रम की सेवा में लगाती हूं।

कहा—देखिए, मैं आश्रम वगैरह के बिल्कुल विरुद्ध हूं।

—विरुद्ध ? इसका माने आप भगवान को नहीं मानते ? वह मेरी हैरानी से देख रही थी। मैंने कहा—इस सम्बन्ध में मैं आपसे तर्क करना चाहता।

महिला बोली—मैं भी आपसे कोई तर्क नहीं करना चाहती—परन्तु दू होकर आप भगवान को नहीं मानते, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। छ अजीब-सा लगता है।—फिर थोड़ा रुककर बोली—खैर, मेरे पास समय म है। आप चन्दा दें या न दें—मैं किसी दूसरे दिन आकर इस सम्बन्ध में बातें करूंगी।—इतना कहकर वह जा ही रही थी कि न जाने फिर क्या सोच-कर रुक गई और बोली—ठीक है, आप भगवान को नहीं मानते। न सही। आमतौर से आजकल सभी पुरुष नास्तिक बनते जा रहे हैं। पर आपकी पत्नी ? क्या वह भी पूजाव्रत इत्यादि कुछ भी नहीं मानती। उनका पालन नहीं करती ?

—मेरी कोई पत्नी नहीं है।

—पत्नी नहीं है ? पत्नी नहीं का अर्थ ?

उसका एक ही अर्थ होता है, पत्नी नहीं है। मैंने कहा।

—आप कहना चाहते हैं कि आपने अभी तक शादी ही नहीं की ?

वस्तुतः किसी व्यक्तिगत प्रसंग पर आलोचना करने में मुझे संकोच हो रहा था, और वह भी एक अपरिचित महिला के साथ। प्रसंग बदल के लिए मैंने कहा—मैं इस वक्त काम में व्यस्त हूं। इस विषय पर आप किसी और समय बातचीत करूंगा। आप भी तो इसी मुहल्ले में र हैं न ?

—हां ! आप किसी भी समय आ सकते हैं। कहकर उसने पता बता दिया।

पता देखने पर मुझे मालूम हुआ कि उसका घर मेरे घर से ज्या नहीं था।

भद्र महिला चली गई। अधिक परेशान किए बिना ही। प बाद से हर रोज उसके प्रति मेरा कुतूहल बढ़ता ही गया, कभी-कभ भी होता कि सच में यह क्या वही महिला है, या मेरी आंखों को को

मैंने बहुत वर्षों के बाद उसे देखा था।—हो सकता है चेहरा बदल गया हो, और फिर कभी-कभी दो चेहरों में साम्य भी तो रहता है। खैर, हमेशा की तरह मैं रोज साधु बाबा के आश्रम से होकर टहलने निकलता। रोज ही भीड़ रहती। दर्शन के लिए कतार से लोग खड़े रहते। रोज ही नियम से भजन होता, प्रसाद बंटता। परन्तु उस महिला को मैंने वहां दुबारा नहीं देखा। कुछ दिनों तक न तो उसके साथ मेरी कहीं कोई मुलाकात हुई, न वह घर पर आई और न ही कभी आश्रम में मिली। मेरे मन में एक घुटन-सी हो रही थी। ऐसा तो होना नहीं चाहिए। वह कहीं चली तो नहीं गई? शायद फिर नेपाल चली गई हो, या बीमार हो। तबीयत तो किसीकी भी खराब हो सकती है। एक दिन मैं अधीर होकर उसके दिए पते की खोज लगाकर उसके घर पहुंच ही गया। मकान गली के अन्दर था। बाहर का दरवाजा खुला पड़ा था। थोड़ा संकोच तो हुआ, पर मैं अन्दर घुस ही गया। बिलकुल साधारण-सा बैठक का कमरा था। दो-चार छोटी कुर्सियां थीं और दूसरी तरफ अन्दर जाने का दरवाजा।

कमरे में कोई नहीं था। सोचा बाहर से ही किसीको आवाज दूं। पुकारूं—अन्दर कोई है?

पर मैं संकुचित-सा खड़ा रहा। इस घर में उस महिला के अलावा और किसीको मैं जानता नहीं था। मुझे भी इस घर के सदस्य नहीं पहचानते थे। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने पर भी जब मुझे किसीके दर्शन नहीं हुए तब मैं बाहर चला आया। सोचा, क्या जरूरत है उससे भेंट करने की। उसके साथ मेरा कोई सम्पर्क भी नहीं—फिर मैं उससे मिलने ही क्यों आया! क्या उसके प्रति मेरी कोई आसक्ति है? या किसी कहानी का प्लाट ढूंढने आया हूं या फिर एक अजीब चरित्र की खोज में कुतूहलवश आया हूं।

अन्त में और प्रतीक्षा किए बिना मैं जैसे आया था वैसे ही गली में उतरकर वापस जाने लगा। जल्दी-जल्दी चल रहा था। किसी भी तरह यह गली पार कर बड़े रास्ते तक पहुंचना चाहता था, अपनी लज्जा बचाने के लिए।

लेकिन बड़े रास्ते के क्रासिंग पर पहुंचते ही देखा— [illegible]

बिल्कुल सामने पड़ गया। मुझे देखकर वह बोली—अरे ! आप
से ?

—आपके घर गया था।—मैंने जवाब दिया।

—मेरे घर ?

—हां ! आपने तो किसी भी दिन आने के लिए कहा था। आपको
नहीं ?

महिला बोली—तो फिर चलिए ! मैं ज़रा श्याम बाज़ार की तरफ़
थी।

—श्याम बाज़ार ? वह क्यों ?

—मेरी छोटी बहन की ससुराल है। बहुत दिनों से नहीं गई थी, इसलिए वह छोड़ ही नहीं रही थी। लौटने में भी देर हो गई। आइए !

महिला आगे-आगे चल रही थी और मैं उसके पीछे-पीछे।

घर पहुंचकर दरवाज़े पर से ही उसने आवाज़ दी—कमला, अरी ओ कमला !

घर के अन्दर भी जाकर एक-दो बार कमला को आवाज़ दी।

मैं बाहर के कमरे में चुपचाप बैठा रहा।

कमला कहीं नहीं मिली। वह फिर वापस बैठक में आई, जहां मैं बैठा था।

बोली—देख रहे हैं न तमाशा। मैं कमला के भरोसे घर छोड़कर गई थी। बोल गई थी, मेरे लौटने के पहले कहीं मत जाना। पर फिर भी वह चली गई।

मैंने पूछा—कमला कौन है ?

—मेरी नौकरानी। पर इन लोगों के भरोसे कहीं जाना भी मुश्किल ही है। कोई भरोसे का नहीं। इतना कहकर आगे क्या करना चाहि... शायद इसीपर विचार करने लगी।

तभी तक एक बूढ़ी औरत आई। उसे देखते ही महिला बोल उठी... कैसी अक्ल है तुम्हारी ? तुमपर भरोसा करके मैं बहन के घर गई... तुम बाहर चली गईं।

कमला बोली—ओ मां ! मैं भला मकान खाली क्यों छोड़ जा...

बाबूजी आए थे, इसलिए मैंने सोचा, एक बार घर पर चक्कर लगा आऊं।

—बाबूजी? बाबूजी कब आए?

कमला बोली—बाबूजी के आने पर ही तो मैं गई थी।

यह सुनते ही महिला का चेहरा उतर गया। बोली—

कहां हैं बाबूजी? मुझे तो दिखाई नहीं देते। इतना कहकर अन्दर वाले कमरे की तरफ जानेवाली ही थी कि उसके पहले ही अन्दर की ओर से एक सज्जन गिरते-पड़ते बाहर के कमरे में आ पहुंचे। उसे देखकर वह महिला थोड़ा चौंकी, फिर बोली—तुम? तुम कब आए?

उस सज्जन की आंखें करौंदों की तरह लाल थीं, और उन्हीं लाल आंखों से वह मुझे घूर रहा था। इस तरह की सन्देहजनक दृष्टि मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। मैं सोच ही रहा था कि अब यहां से चलना चाहिए कि उस सज्जन ने मुझसे पूछा—आप कौन हैं? सरयू की जान-पहचान के आदमी?

इसके जवाब में मैं क्या बोलूं, समझ में नहीं आया।

महिला सज्जन को रोकते हुए बोली—तुम इस कमरे में क्यों आए? चलो। उस कमरे में चलो।

पर वह बिल्कुल अड़े रहे। बोले—क्यों? उस कमरे में क्यों जाऊं? मैं यहां बिल्कुल ठीक हूं।

सरयू बोली—नहीं। तुम ठीक नहीं हो। आज तुम फिर पीकर आए हो। चलो, उस कमरे में चलो।

पर वह सरयू का हाथ छुड़ाते हुए बोला—क्यों? तुम्हें शर्म आ रही है? मैं शराब पीता हूं, यह जानकर लोग मुझसे घृणा करते हैं। मैं जो करता हूं, ठीक करता हूं। मैं शराब पीता हूं, इसमें किसीके बाप का क्या?

वातावरण कुत्सित बनता जा रहा था। मैं भी शर्म से गड़ा जा रहा था। सरयू भी लज्जित थी। बोली—क्या बक रहे हो तुम? शराब पीने से क्या दिमाग भी ठिकाने पर नहीं रहा?

सरयू को अनसुनी करके उसने मुझे अपना गवाह बनाया। बोला

—देख रहे हैं आप ? कैसी सती वन रही है सरयू। देख लीजिए अच्छी तरह। मैं जनाव रोज़ शराव पीता हूं। पर कभी कुछ वोलती नहीं, पर आज आप साथ में हैं इस कारण शर्म से मरी जा रही है। इतना कहकर वह ठहाका मारकर हंसने लगा।

सरयू उनसे वोली—यह क्या हो रहा है ? तुम्हें ज़रा भी लज्जा-शर्म नहीं ? आज यह पहली वार हमारे घर आए हैं, और उनके सामने तुम मुझे इस कदर वेइज्ज़त कर रहे हो ? वे क्या सोचेंगे ?

वह वोला—तो फिर यह वताओ कि इन्हें पकड़कर कहां से लाई। यह कौन हैं तुम्हारे ?

सरयू वोली—होंगे कौन ? कोई भी नहीं। इसी मुहल्ले में रहते हैं।

—ओ ! एक मुहल्ले में रहने से जिस किसीको भी घर में बुलाकर खातिर करनी पड़ेगी ? यह तुम्हारी नई पकड़ है ?

मैं वहुत देर से सह रहा था। इन दोनों के वीच अव मुझे एक क्षण भी रहना अनुचित लग रहा था। पर एक वात मेरी समझ में नहीं आई कि आखिर इन दोनों के वीच सम्वन्ध क्या है ? खैर, सम्वन्ध कुछ भी हो, उससे मेरा क्या लेना-देना। मैं उठ खड़ा हुआ। वोला—मैं चलता हूं।

यह सुनते ही वह सज्जन लटपटाते हुए दौड़कर आए और मुझे पकड़ लिया। वोले—नहीं ! नहीं ! आप क्यों जाएंगे जी ! आपको सरयू ने आदरपूर्वक घर वुलाया है, आप रहिए ! मैं ही जाता हूं। मैं तो साहव फालतू आदमी ठहरा ! यह कहकर वह वाहर के दरवाज़े की तरफ वढ़ा, पर फिर मुड़कर वोला—मेरा कोट यहां छूट गया है। कोट के लिए अन्दर के कमरे में जाने से पहले ही सरयू ने कोट लाकर उसकी तरफ फेंक दिया।

कोट सज्जन के मुंह पर जाकर पड़ा।

उसने निर्विकार भाव से उस कोट को पहन लिया और मेरी तरफ देखकर वोला—देखा न ? देखा औरत का तेज ? लेकिन एक दिन मुझे भी आपकी ही तरह खातिर करके, राह भटकाकर अपने घर लाई थी। आप सुनकर और देखकर जाइए—वही औरत आज मुझे घर से निकाल रही है और आपको वुलाकर लाई है। सावधान हो जाइएगा, साहव ! वहुत सावधान !

मैं इसका प्रतिवाद करना चाहता था, पर सरयू ने मुझे रोक दिया।

बोली—आप उनकी बातों पर मत जाइए। वह एक जानवर है। आदमी का सम्मान नहीं कर सकता। उसे यही दण्ड मिलना चाहिए। जाए जहन्नुम में।

वह चला गया।

सरयू चुपचाप थोड़ी देर तक उसी जगह खड़ी रही। फिर एक लम्बी सांस ली।

इसी मौके पर मैंने कहा—मैं अब चल रहा हूं। मेरे आने से बिना कारण एक अप्रिय घटना हो गई। अगर मुझे पहले पता होता तो सच, मैं कभी नहीं आता।

सरयू बोली—नहीं! आप बैठिए। अगर इस वक्त चले गए तो मैं समझूंगी आप मेरे ऊपर नाराज होकर जा रहे हैं।

—नहीं, मैं ऐसा नहीं सोचूंगा। वैसे भी मैं किसी खास काम से तो आया नहीं था। आपने कहा था इसलिए यों ही चला आया। अब चलता हूं।

इतना कहकर उसकी अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना ही मैं वहां से विदा हो गया।

४

यह घटना यहीं समाप्त हो सकती थी। जीवन में बहुत-सी ऐसी घटनाएं घटती हैं जिनके आरम्भ का पता तो सबको होता है, पर जिनका अन्त अज्ञात रह जाता है। इतनी बड़ी दुनिया में कब कौन आता है, और कब कौन खो जाता है, इसका हिसाब कौन रखे? लेकिन कुछ घटनाएं ऐसी भी होती हैं जो रेलगाड़ी की तरह बनी-बनाई पटरी पर चलकर रेल की तरह ही एक निर्दिष्ट गन्तव्य पर जाकर ही खत्म होती है।

सरयू की घटना भी कुछ ऐसी ही थी।

मेरा जो कार्य-क्षेत्र है—वहां बहुत लोगों की भीड़ रहती है, क्योंकि मेरा कारोबार ही मनुष्य-चरित्र को लेकर है। अपने काम में मैं जब डूब

ता हूं तव मन करता है—डूवा ही रहूं, लिखता ही जाऊं। जव तक खन समाप्त नहीं होता, मन को चैन नहीं मिलता। मैं उस समय ऐसी अवस्था से गुज़र रहा था।

लेखन को जीविका वनाने में सुविधा तो है, पर इसकी ज़िम्मेदारी भी छ कम नहीं। संख्या के साथ गुण का साम्य कायम रखने की चेष्टा में खक दिन-रात क्षत-विक्षत होता रहता है।

इसी समय एक दिन किसीने मेरा दरवाज़ा खटखटाया। मेरा नौकर किसी काम से गया हुआ था। इसलिए मैंने ही ऊंची आवाज़ से पूछा—कौन ?

वाहर से किसी महिला की क्षीण आवाज़ सुनाई पड़ी।

जल्दी से जाकर स्वयं ही मैंने दरवाज़ा खोल दिया। देखा, महिला··· सरयू थी।

—आप ? मैंने अचरज से पूछा।

सरयू झट से मेरे कमरे के अन्दर घुस आई और सिर पर कपड़ा थोड़ा ज्यादा खींचकर, थोड़ा सहज वनने की चेष्टा की। वोली—मुझे 'आप' मत कहिए। इतना सम्मान मुझे न दीजिए। मैं छोटी हूं, केवल उम्र में ही नहीं, हर क्षेत्र में। अगर आप मुझे अच्छी तरह जान लें तो मुझसे वात करने में भी आपको घृणा होगी।

सरयू की वात सुनकर मैं हतप्रभ-सा खड़ा रहा। इस तरह से इस महिला ने पहले मुझसे कभी वातें नहीं की थीं। अचानक ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी कि वह इस तरह से मेरे समक्ष आत्मसमर्पण कर रही थी।

कमरे के अन्दर घुसकर सरयू वोली—दरवाज़ा वन्द कर रही हूं। आप बुरा मत मानिएगा। मेरे पीछे पुलिस पड़ी है।

—पुलिस ?

—हां, पुलिस। मैं डरकर आपके मकान में आई हूं।

—लेकिन व्यर्थ में तुम्हारे पीछे पुलिस पड़ेगी क्यों ? तुमने क्या किया है ?

सरयू वोली—उस दिन जिस आदमी को आपने मेरे यहां देखा था, जो नशे में चूर पागलपन कर रहा था, उसीने मुझे पकड़ने के लिए पुलिस से

कहा होगा।

मैंने पूछा—लेकिन वह है कौन ? और तुमने क्या किया है कि वह तुम्हें पुलिस में पकड़वा देगा ?

सरयू बोली—मैं सब बताऊंगी। पहले आप मुझे एक गिलास पानी दे सकते हैं ? मेरा गला सूख गया है, आपके घर पर कोई नौकर या नौकरानी नहीं ?

मैंने कहा—उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पानी मैं ला देता हूं।—कहकर अन्दर से एक गिलास ठण्डा पानी लाकर मैंने उसके हाथ में दिया।

सरयू बोली—पानी आपको ही लाना पड़ा। मेरा पाप और बढ़ा, लेकिन क्या करती, गला बिल्कुल सूख गया था। कहकर वह एक ही सांस में सारा पानी पी गई। बोली—यह जूठा गिलास मैं आपको नहीं दूंगी। अपनी रसोई बता दीजिए—मैं माजकर रख दूंगी।

मैंने उसके हाथ से गिलास ले लिया। कहा—तुम्हें यह सब कुछ करने की कोई जरूरत नहीं। यह यहीं रहेगा, बाद में भी धुल सकता है। अब बताओ वह आदमी कौन था ?

सरयू बोली—वह एक फरेबी है। वही मुझे इस रास्ते पर लाया है।

मैं फिर भी नहीं समझा। पूछा—कैसा रास्ता ? क्या कहना चाहती हो ?

सरयू अचानक रो पड़ी। कुछ बोलना चाह रही थी, पर अटक गई। फिर थोड़ा रुककर बोली—आप यह सब न सुनें तो अच्छा है। किसीको भी ये बातें मालूम नहीं, और किसीको कहने लायक भी नहीं। विश्वास कीजिए, मैं भी ब्राह्मण की लड़की हूं। अच्छे खानदान की हूं। वही आदमी मुझे इस पथ पर ले आया।

फिर वही रहस्य।

मैं समझ गया। इतनी आसानी से यह औरत कुछ नहीं कहेगी। और जो स्वयं कहना नहीं चाहती उसकी बात जबर्दस्ती सुननी भी नहीं चाहिए।

मैंने कहा—तुम क्या समझती हो कि यहां रहने से पुलिस तुम्हें नहीं पकड़ सकेगी ?

सरयू बोली—देखिए, सुबह तक मुझे किसीने कुछ भी नहीं बताया

था। रोज की तरह नींद से उठकर खाना वगैरह बनाने बैठी थी। कमला को तो आपने देखा है न ?

—हां। तुम्हारी वह नौकरानी ?

सरयू बोली—हां ! असल में मुझे पता नहीं था कि वह कमला भी इसमें मिली है। निशिकान्त बाबू को भी तो आपने देखा है ?

—कौन निशिकान्त बाबू ?

—वही जो नशे में धुत होकर बक रहा था। वही निशिकान्त है। निशिकान्त हालदार।

मैंने पूछा—उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?

—सम्बन्ध ? सम्बन्ध कुछ भी नहीं। केवल कृतज्ञता है, एक दिन उसने मुझे विपदा से बचाया था। क्या पता था कि वही किसी दिन मुझे विपत्ति में भी डाल देगा।

बातचीत के दौरान ही दरवाजे पर कुछ आहट सुनाई पड़ी। सरयू भयंकर रूप से डर गई। बोली—शायद पुलिस आ गई। मुझे अन्दर के किसी कमरे में छुपा लीजिए। जल्दी कीजिए। कहकर वह स्वयं ही बगल वाले कमरे में चली गई। मैं भी उसके साथ-साथ उस कमरे में चला गया। यह मेरे सोने का कमरा था। महिला तब तक मेरी आलमारी के पीछे छुप गई थी। मुझे देखकर फुसफुसाकर बोली—आप जाइए। देर मत कीजिए। आप पुलिस को मेरे बारे में बता मत दीजिएगा। जाइए।

दरवाजा खोलकर मैं कमरे से निकला। मन में थोड़ा डर भी था। जान-बूझकर भी मैंने इसे आश्रय क्यों दिया ! मैं तो जानता था इस महिला का चरित्र सन्देहजनक है। नेपाल से गांजे की तस्करी करती थी—यह सब जानकर भी उस दिन क्यों तो मैं उसके घर गया और क्यों ही आज इसे अपने घर में शरण दे रहा था ?

दरवाजा खोलते ही मैं हैरान रह गया। पुलिस का आदमी नहीं था। मेरा नौकर कानाई खड़ा था।

—तू कहां गया था ?

कानाई बोला—सरसों का तेल खत्म हो गया था। मैं तेल खरीदने गया था।

कानाई तेल लेकर रसोई की तरफ गया। और मैं अपने सोने के कमरे की तरफ। लेकिन सरयू कहां थी? बाथरूम देखा—पलंग के नीचे आलमारी के पीछे देखा, पर वह कहीं दिखाई नहीं दी। अन्त में देखा बाथरूम का पिछला दरवाजा, जिधर से जमादार आता था, खुला पड़ा था। उस दरवाजे से भी झांका। पर वह दिखाई नहीं पड़ी। शायद पुलिस के डर से उसी दरवाजे से कहीं भाग गई थी।

मैं निश्चिन्त हुआ। अगर सच मे पुलिस आती तो नाहक मुझे भी परेशानी उठानी पड़ती।

मन में यह भी तय कर लिया कि अगर फिर कभी सरयू मेरे घर पर आई तो उसे आश्रय नहीं दूंगा। ऐसी लड़कियों से दूर ही रहना चाहिए।

५

सोचा था यह प्रसंग यहीं समाप्त हो जाएगा। जीवन की राह पर कितने लोगों से अपनापन हो जाता है, फिर आकस्मिक रूप से जीवन से ये खो भी जाते हैं। मेरे लेखक-जीवन के शुरू से यदि देखा जाए तो सम्पूर्ण जीवन की राह पर केवल मनुष्यों का एक लम्बा जुलूस दिखाई देता है। एक के बाद दूसरा क्रम से आया है और गया है।

मनुष्य की जीवन-यात्रा का पथ भी सम्भवतः जुलूसों से ही भरा हुआ है। नहीं तो कब की, कौन-सी सरयू के साथ इस कलकत्ता में भेंट क्यों हुई। और यदि भेंट हुई भी तो इस रहस्यमय ढंग से वह गायब भी क्यों हो गई? मनुष्यों की कतार जितनी अजीब है, उतना ही अजीब शहर है—यह कलकत्ता। पुण्य करने के लिए भी यहां आना पड़ता है और पाप करने के लिए भी। सत्रहवीं सदी के शुरू से लेकर बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक इस नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ।

वही पुराना शहर प्रतिदिन नया होकर मन को चौंका देता है। जिस सड़क से रोज गुजरता हूं, वही किसी आकस्मिक घटना से नया बन जाता है। और इसी मुहूर्त मे मैं इस कलकत्ता को भी नये रूप में पाता हूं। यह

कुछ वैसा ही है जैसे एक ही लड़की का नित्य बदली हुई पोशाक पहनकर नई बन जाना।

उस दिन अचानक किसीने मुझे पीछे से पुकारा। मेरा नाम लेकर पुकारा था, पर मैंने उसे पहचाना नहीं। कहा भी—क्षमा कीजिए। आपको पहचान नहीं पा रहा हूं।

उसने कहा—पहचानिएगा भी कैसे ? एक बार के सिवाय दुबारा तो आपने कभी मुझे देखा नहीं।

मैंने कहा—आपको कहां देखा है, ज़रा बताइए तो ?

उसने कहा—आपके अपने मुहल्ले में।

—अपने मोहल्ले में, मतलब ?

—माने, आप पहले टालीगंज में रहते थे न ?

—हां।

—उसी मोहल्ले में सरयू नाम की किसी लड़की को आप जानते थे ?

फिर मुझे सब कुछ याद आ गया।

बोला—वह तो बहुत पुरानी बात है।

—पुरानी बात है इसलिए तो कह रहा हूं। कितनी तेज़ औरत थी—देखा न ? लेकिन साहब, बहुत नमकहराम है। मैंने उसका इतना भला किया, पर बदले में उसने मुझे सड़क पर बिठा दिया।—मुझे कुतूहल हुआ। टालीगंज छोड़ने के बाद वह प्रसंग मैं बिल्कुल भूल चुका था। और फिर हर व्यक्ति की तरह मेरे जीवन की भी कुछ समस्याएं थीं, उन्हींके धक्कों को संभालने में समय बीत गया था—किस-किसको याद रखता ?

उस सज्जन ने बड़े आग्रह से मुझे कहा—आइए, एक कप चाय पीजिए।

अभी थोड़ी देर पहले तक वह शायद उसी दुकान पर बैठकर चाय पी रहा था, फिर मुझे लेकर दुबारा वहां जा बैठा।

इस दुकान पर बैठने की मेरी ज़रा भी इच्छा नहीं हो रही थी, पर मजबूरन बैठना ही पड़ा।

टीन की एक जंग लगी हुई कुर्सी मेरी तरफ बढ़ाकर बोला—बैठिए।

उसके बाद बोला—इस दुकान में ज्यादा ग्राहक नहीं आते, इसीलिए मैं

यहीं आता हूं। एकान्त में बैठकर बातचीत करने की इससे अच्छी जगह पूरे नगर में आपको नहीं मिलेगी।

उसके बाद दुकानदार से बोला—ओ भाई खेतर, एक कप चाय और देना।

मेरी आपत्ति उसने सुनी नहीं। जबर्दस्ती एक कप चाय पकड़ा दी।

बोला—पीजिए साहब! इसे आप चाय भी कह सकते हैं और इमली का पानी भी। लेकिन क्या करूं? आजकल आमदनी घट गई है, अच्छी दुकान पर चाय पीने की सामर्थ्य नहीं रही। इस जहर को पीने के लिए यहीं आना पड़ता है।

फिर बोला—मेरा नाम शायद आपको मालूम नहीं।

—नहीं।

—मेरा नाम निशिकान्त है, निशिकान्त हालदार।—कहकर जेब से एक सस्ती-सी सिगरेट का पैकेट निकालकर बोला—सिगरेट चलेगी?

—चलती है। पर अभी जरूरत नहीं। आप पीजिए।

निशिकान्त बोला—न पीना ही अच्छा है। सस्ती सिगरेट जितनी कम पीजिए, उतना ही अच्छा है। मैं भी पहले कभी सस्ती चीज छूता तक नहीं था। कभी मैं भी बड़ी कीमती सिगरेट पिया करता था और केवल सिगरेट ही क्यों? विलायती ह्विस्की के अलावा कुछ पीता ही नहीं था। पर हालत बदल गई, इसीलिए निशिकान्त हालदार को देशी माल पीना पड़ रहा है। दुखड़ा सुनाऊं भी तो किसे! सुनेगा भी कौन?

मैं अचानक पूछ बैठा—सरयू अब कहां है?

निशिकान्त बोला—उसकी बात मत उठाइए साहब! वह एकदम चली गई।

—मतलब?

—मतलब गई। कहीं की न रही।

—थोड़ा खुलकर ही बताइए न निशिकान्त बाबू। बात कुछ पल्ले नहीं पड़ रही।

निशिकान्त बोला—एक सीधी-सी बात आपकी समझ में नहीं आ रही। आप ठहरे लेखक, इतना तो आपको समझना ही चाहिए, दाल-रोटी

की तरह सीधी-सपाट बात है ।

बातचीत के बीच ही एक और कांड हुआ ।

एक बूढ़ा आदमी सड़क पर जा रहा था । निशिकान्त को देखकर सामने आकर खड़ा हो गया । बोला—कमाल करते हैं । आप यहां हैं, और मैं आप-के लिए सारी दुनिया छान रहा हूं । कैसे सज्जन हैं आप ?—मैं अवाक् बैठा रहा । देखा, निशिकान्त का चेहरा फीका पड़ गया था । अंधेरे रास्ते में शेर देखने पर जैसा चेहरा होता है, निशिकान्त उतना ही डरा दीख रहा था । लेकिन निशिकान्त के कुछ कहने के पहले ही बूढ़े सज्जन ने कहा—'कल भेंट करूंगा', कहकर आप हवा हो गए । आज मैं आपको नहीं छोड़ूंगा । जहां से भी हो, मेरे किराए के पैसे दे दीजिये । चलिए मेरे साथ !

निशिकान्त बोला—आज ज़रा मैं व्यस्त हूं मल्लिकजी । देखिए न, इन सज्जन से मुझे कुछ रुपये वापस लेने हैं, यह जैसे ही लौटाएंगे, मैं आपको दे दूंगा । आप फिक्र मत कीजिए ।

निशिकान्त की बात सुनकर मैं तो जैसे आकाश से गिर पड़ा । यह आदमी कह क्या रहा था । मकानमालिक ने अब मेरी तरफ मुड़कर मुझे अच्छी तरह देखा । शायद जानना चाहता था, मैं कौन था ? निशिकान्त से मेरा कैस रिश्ता था और वास्तव में निशिकान्त से मैंने कुछ उधार लिया था या नहीं घटना की आकस्मिकता से मैं बेवकूफ-सा बन गया था । मेरे मुंह बोली ही नहीं निकली ।

निशिकान्त मेरी ओर इशारा कर कह रहा था—अगर आपको विश्व नहीं होता तो आप इनसे पूछ लीजिए । यह भी कुछ मुश्किल में पड़े इसलिए रुपया चुका नहीं पा रहे हैं । खैर, इसमें उनका भी क्या कसूर दिन ही कड़की के हैं । मैं भी ज़्यादा दबाव कैसे डालूं—बोलिए ?

मकान-मालिक मल्लिक साहब बोले—ये आपको रुपया दे सकते है नहीं, यह मेरे देखने की बात नहीं है । मेरे किरायेदार तो आप हैं महीनों से किराया बाकी पड़ा है और फिर मेरा लेन-देन तो आपके है । आप मुझे उनको क्यों दिखा रहे हैं । वह आपके रुपये नहीं लौटा इस कारण मैं क्यों तकलीफ पाऊं ? आज आप किसी भी हालत में छू सकते, चलिए !

निशिकान्त फिर बोला—मैंने आपको कहा न कि किराया तो दे ही दूंगा। मैं क्या कहीं भाग रहा हूं कि आप इस तरह उल्टा-सीधा बक रहे हैं ?

—क्या कहा ? मैं बक रहा हूं ?

आप बक नहीं रहे हैं तो क्या मैं बक रहा हूं ? मुझे क्या पड़ी है ? यह सज्जन ही गवाह हैं, इन्हींसे पूछिए ? आप ही बोलिए साहब, मैंने विनीत भाव से कहा था या नहीं कि किराये के रुपये मैं दे दूंगा। जैसे ही मेरे हाथ में रुपये आएंगे मैं पाई-पाई चुका दूंगा।

मल्लिक साहब बोले—ये सब बातें मैं बहुत बार पहले भी सुन चुका हूं। इस बार बाकी के पैसे न चुकाने पर मैं कमरे का ताला तोड़कर बक्सा-पेटी सब सड़क पर फेंक दूंगा।

निशिकान्त मेरी तरफ ताककर बोला—सुन रहे हैं जनाब, इनकी बातें ? आप गवाह रहे। जरूरत पड़ी तो कचहरी में जाकर आपको गवाही देनी होगी। मैं इनके नाम फौजदारी का मुकदमा ठोकूंगा।

—क्या कहा ? मेरे नाम फौजदारी का मुकदमा करोगे ?—मल्लिक साहब चिल्लाए। अब चाय की दुकान का छोकरा खेत्तर आकर बोला—दुकान के अन्दर हल्ला मत मचाइए सर ! चिल्लाना है तो बाहर सड़क पर जाकर चिल्लाइए।

मैंने देखा—अजीब विपत्ति है। फालतू झमेले में मैं क्यों इस तरह फंस गया ! मुझे इस मामले से क्या लेना-देना ?

मैं उठने लगा, पर निशिकान्त ने मुझे रोक लिया। बोला—आप भाग क्यों रहे हैं साहब ? आपको तो मैं गवाह रखूंगा। आप कचहरी में जाकर गवाही दीजिएगा कि आपने अपनी आंखों से क्या देखा है। इस मल्लिक के बच्चे ने सबके सामने मेरा अपमान किया है।

मकान-मालिक मल्लिक भी क्यों दबता ? वह भी चिल्लाया—ठीक किया है, जो तुम्हारा अपमान किया है। हजार बार तेरा अपमान करूंगा। जब मकान किराये पर लिया था तब होश नहीं था ? उस समय तो बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे। हजार रुपया वेतन है। खूबसूरत बीवी थी साथ में, अब वही बीवी आपको छोड़ क्यों गई ?

चाय की दुकान का वह छोकरा खेत्तर फिर आकर बोला—आप लोग चुप भी रहिए। झगड़ा या मारपीट दुकान के बाहर करें तो अच्छा है। मेरी दुकान के अन्दर यह सब कुछ नहीं चलेगा।

निशिकान्त को जब और कुछ नहीं सूझा तब उसने खेत्तर को ही गवाह बनाकर कहा—बोलो तो खेत्तर, तुम एक विवेकशील आदमी ठहरे, तुम्हीं बताओ, जरूरत पड़ने पर लोग उधार नहीं लेते? तुम्हारे ही पास कितने कप चाय के पैसे बाकी हैं, लेकिन तुमने क्या कभी मेरा अपमान किया है? और अपमान करोगे भी क्यों? तुम अच्छे खानदान के लड़के हो, इसलिए तुम्हारा व्यवहार भी अच्छा है। जो छोटे होते हैं, उन्हींका व्यवहार हीन होता है।

उसके बाद मेरी ओर इशारा कर निशिकान्त बोला—इन्हें देखो? यह भी सज्जन हैं। वाकई में अच्छे हैं। लेखक आदमी हैं, पर इस समय इनका समय खराब चल रहा है। इनसे मुझे छह सौ रुपये लेने हैं। सामने दशहरा है। पत्रिका के विशेषांक में उपन्यास लिखकर जैसे ही इनको रुपये मिलेंगे, यह मुझे वापस कर देंगे, और तब उन पैसों से मैं तुम्हारे चाय के पैसे, मल्लिक साहब के बाकी के किराये के रुपये सभी एकसाथ चुका दूंगा।

यह सुनकर मल्लिक साहब एक बार फिर तुनक उठे। बोले—रहने भी दो। कब कौन किसका उधार चुकाएगा, उसके लिए मैं क्यों सिरदर्द मोल लूं। मेरे पैसे तुम कब चुकाओगे, पहले यही बताओ।

इसके जवाब में निशिकान्त क्या बोला, मैं सुन नहीं पाया, क्योंकि उसी क्षण सबकी नज़र बचाकर मैं सड़क पर सरक आने में सफल हो गया था।

चलते-चलते मैं निशिकान्त के बारे में ही सोच रहा था। कितना धूर्त था यह निशिकान्त। एक लड़की का जीवन तो बर्बाद कर ही चुका था और अब अपने सर्वनाश पर तुला था। और कहता था कि मुझपर उसके छह सौ रुपये उधार थे। ताज्जुब है। जो अभाव में इतना पिसा हुआ था, उसे शराब पीने की जरूरत ही क्या थी?

मकान-मालिक ने उसे सबके सामने बेइज्ज़त कर उचित ही काम किया था। इस तरह के आदमी के साथ ऐसा ही होना चाहिए। यह सब सोचते-सोचते मैं बहुत दूर तक चला आया था कि अचानक पीछे से वही

पुकार—सुनिए-सुनिए···ओ साहब···।

पीछे मुड़कर देखा—निशिकान्त दौड़ता-हाफता मेरी तरफ भागता आ रहा था।

मैंने पूछा—क्या बात है ?

हांफते हुए निशिकान्त बोला—आप अचानक भाग क्यों आए ? डर गए क्या ?

मैंने कहा—आप लोगों के मामले में मैं फंसना नहीं चाहता था। आपने झूठ क्यों कहा कि मैंने आपसे छह सौ रुपये उधार ले रखे हैं। सच बताइए —मैंने कभी आपसे छह सौ रुपये मांगे हैं ? आपको मालूम होना चाहिए कि मैं न तो किसीको उधार देता हूं और न ही उधार लेता हूं।

निशिकान्त बोला—वेरी गुड प्रिन्सपल, वेरी गुड। आपकी तरह मेरा भी यही सिद्धान्त है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जिन्दगी में किसीको न उधार दूंगा और न ही उधार लूंगा। उधार का लेन-देन मेरी नजर में हराम···।

मैंने कहा—लेकिन आप तो मल्लिकजी के मकान में किराये पर रहते हैं, फिर नियम से किराया क्यों नहीं देते ? इस तरह से अपमानित तो नहीं होना पड़ता।

—उस मल्लिक की बात कर रहे हैं ? आपको मालूम है, मल्लिक कितना हरामी आदमी है ? और आप किराये की बात करते हैं, वह भी कोई मकान है ? वह मकान नहीं है।

—मकान नहीं है, मतलब ?

—अरे ! सीधी-सी बात है, अगर मकान होता तो मैं खुद महीने की पहली तारीख को ही किराया दे देता। असल में यह कौए के घोंसले से भी गया-बीता है। पानी का नल नहीं, कमरे की दीवारें नहीं, सर पर छत नहीं, और ऊपर से किराया बीस रुपये। आप जान रखिए वह आदमी बिल्कुल खानदानी हरामी है। मैं मजबूरी में था, इसीलिए तो सरयू को लेकर उस कौए के घोंसले में जाना पड़ा।

—क्यों, मजबूरी किस बात की थी ? आपका टालीगंज का वह मकान तो अच्छा ही था। पक्का मकान, अलग बैठक। उस मकान में तो मैं गया

भी था। वैसा मकान क्या आज के दिन में छोड़ना चाहिए ?

निशिकान्त ने जेब से एक सिगरेट निकाली। सुलगाकर बोला—क्यों छोड़ा ?...क्यों छोड़ना पड़ा, साहब, यह अगर आपको सुनाऊं तो आप जैसे आदमी तो रो पड़ेंगे। तब आप ही कहेंगे...बस करो निशिकान्त, बस करो ! मैं आगे और नहीं सुन सकता। आप अपने कानों में उंगली डाल लेंगे।

मैंने कहा—कुछ भी हो। तुम बताओ—मैं सुनूंगा।

निशिकान्त बोला—ज़िद करते हैं तो सुनिए। पर बाद में मुझे दोष मत दीजिएगा। फिर सुनकर आप ही बताइएगा कि मैं ठीक हूं या सरयू।

—बोलो !

निशिकान्त ने बताया—वह घर मैंने केवल सरयू के कारण छोड़ा।

—क्यों ? सरयू का क्या अपराध था ?

—सर ! आप हैं एक लेखक। सीधी-सी बात भी अगर समझ नहीं सकते तो आप कैसे लेखक हैं ? आप क्या जासूसी उपन्यास लिखते हैं ?

मैंने कहा—क्यों भई, जासूसी उपन्यास लिखने वाले क्या लेखक नहीं होते ?

निशिकान्त बोला—खाक लेखक होते हैं, केवल खून-खराबे की बातें ही तो लिखते हैं। देखिए न, कभी मेरे दिमाग पर भी खून सवार हो जाता है। यह बात आप जैसे लेखक ही समझ सकते हैं। कभी-कभी तो मल्लिक साहब का खून कर देने की इच्छा होती है।

मैं अच्छी तरह समझ रहा था कि असली बात को निशिकान्त टाल रहा है। मैंने फिर पूछा—टालीगंज का मकान तुमने क्यों छोड़ा, बताया नहीं ?

निशिकान्त बोला—दुख की बात क्या बताऊं, उसी सरयू के कारण छोड़ा।

—लेकिन सरयू की गलती क्या थी, यह बताओ।

निशिकान्त बोला—औरत का इतना रूप क्या अच्छा है, आप ही बताइए ? बहुत सुन्दर औरत कभी सुखी नहीं होती। वहां भी सरयू पर मकान-मालिक की नजर पड़ी। अपनी पत्नी पर दूसरे की नज़र कौन मर्द

सह सकता है ?—फिर थोड़ा रुककर बोला—एक तो आप की तरह झुलसता रूप, उसपर बांझ। बांझ औरत यदि सुन्दर हो तो लोग] और भी पीछे पड़ जाते हैं, जैसे अभी एक पडा है।

—अब कौन पड़ा है उसके पीछे ?

निशिकान्त बोला—वही मल्लिक साहब।

—क्या कहते हो ? मल्लिक तो बुड्ढा आदमी है।

—बुड्ढे तो और घाघ होते हैं।

मैं समझ नही सका। पूछा—तुम कहना क्या चाहते हो ?

—आप तो कमाल करते हैं, हंसी आती है आपपर। बुड्ढो मे अधिक वासना होती है, इसलिए, खूबसूरत औरतों को देखने पर उनका मन भी जल्दी फिसलता है। इसीलिए तो कह रहा हूं कि मल्लिक बड़ा हरामी आदमी है। मेरी पत्नी को देखते ही तुरन्त मकान किराये पर दे दिया। बीस रुपया किराया तय हुआ था—पर कभी भी तकाज़ा नही करता था। पर जैसे ही मैं घर से बाहर निकल जाता था, वह मेरी पत्नी के साथ मसखरी करने लगता। लेकिन अब तो यह सब चल नही रहा है। सरयू तो चली गई। इसलिए किराये का तकाजा कर रहा है। बुड्ढा कम बदमाश नही है।

यह सब सुनकर मेरे दिमाग मे अजीब-सी प्रतिक्रिया हो रही थी। तो फिर क्या अब तक मैंने जो कुछ समझा था वह गलत था ? अगर ऐसी बात थी तो उस दिन मोकामाघाट स्टेशन पर कौन मेरे जिम्मे गांजे से भरा सूटकेस छोड़कर भागी थी ? टालीगंज में आदि गंगा के किनारे साधु बाबा के अखाड़े पर कौन प्रसाद वितरण कर रही थी और फिर आश्रम के नाम से चन्दा वसूलने कौन आई थी ? पुलिस के डर से मेरे घर पर शरण किसने ली थी और कौन बाथरूम के पीछे के दरवाजे से भाग निकली थी ?—यह सब किसकी हरकत थी ? निशिकान्त मेरे साथ-साथ चल रहा था।

मैंने पिछली किसी बात की चर्चा नही की, सिर्फ इतना पूछा—सरयू कहां चली गई ?

निशिकान्त बोला—आपको कहा न—जहन्नुम में गई। एक तो सुन्दर, उसपर से बांझ। जहन्नुम मे जाएगी यह तो मैं पहले से ही जानता

था। लेकिन मुश्किल क्या है जानते हैं ? मैं बहुत दयालु प्रकृति का हूं। किसीका दुख मुझसे सहा नहीं जाता। शरणार्थी बनकर बदन पर एक कपड़ा लपेटे जब वह पाकिस्तान से आई थी, तब उसके खाने-रहने का कोई ठिकाना नहीं था। उस दिन अगर मैं सरयू को नहीं बचाता तो वह गुण्डों के पल्ले पड़ ही जाती। मैंने सोचा लड़की है—उसे सहारा चाहिए, इसलिए आगे-पीछे कुछ न सोचकर उससे शादी कर ली। अब सोचता हूं दुनिया में किसी-का भला नहीं करना चाहिए। जिसका भला कीजिएगा, वही आपका सर्वनाश करेगा। विद्यासागर क्या बेवकूफ थे, जो उन्होंने कहा था कि जिसकी तुम भलाई करोगे—वह तुम्हारा बुरा जरूर चाहेगा। सरयू ने भी मेरे साथ वही किया। नहीं तो क्या मल्लिक जैसे घटिया आदमी के सामने मुझे अपमानित होना पड़ता ?

मैंने पूछा—अब तुम्हारी पत्नी कहां है ?

निशिकान्त बोला—अब वह किसी धनी व्यक्ति के पास है···उसकी रखैल बन गई है।

—वह धनी व्यक्ति है कौन ?

निशिकान्त बोला—आप उसे नहीं जानते। कलकत्ता में पैसे वालों की कोई कमी है ? बस एक बार महक मिलने की देर है, चारों तरफ से अपना जाल फैला देते हैं।

—तुम उसका पता नहीं जानते ?

—जानता हूं। उसका पता भी जानता हूं। उसके बाप का नाम भी जानता हूं। लेकिन वहां जा नहीं सकता। सरयू मुझे देखते ही भगा देगी।

—भगा क्यों देगी ?

—क्यों नहीं भगाएगी ? मैं ठहरा एक गरीब आदमी। मरने पर आग देने वाला या मुकदमे में जमानत देने वाला मेरा अपना कोई नहीं। मैं तो सरयू को एक अच्छी साड़ी भी नहीं दे सकता। और फिर आप औरत का मन तो जानते ही हैं। केवल साड़ी और गहनों से ही खुश रह सकती है जब मेरे पास पैसे थे, मैंने भी उसे बहुत कुछ दिया, लेकिन अब मैं खत्म हो गया हूं। फिर मधुमक्खी आएगी कहां ? थोड़ा रुककर फिर बोला—आप मेरा एक उपकार कीजिए सर !

—बोलो क्या उपकार कर सकता हूं ?

—अगर आप मेरा इतना-सा उपकार कर सकें तो मैं जीवन-भर आपका गुलाम रहूंगा। असल में जानते हैं, सरयू को मैं जितना खराब बता रहा हूं वह वैसी है नहीं। वह बहुत अच्छी है, दयालु है। साड़ी-गहनों के प्रति उसका लालच तो है और वह किस लड़की को नहीं रहता, पर उसके जैसा मन आपको कहीं नहीं मिलेगा। दुख में, कष्ट में, परेशान होकर कभी-कभार मुझसे गाली-गलौज अवश्य करती है, पर मैं भी तो कोई धुली तुलसी का पत्ता नहीं। मुझमें भी तो हर तरह के दोष हैं।

—तुममें भी दोष हैं ?

—दोष एक है साहब, जो गिनाऊं ? हजारों बुरी आदतें हैं मुझमें··· मैं शराबी हूं।

मैंने कहा—शराब पीना तो कोई बड़ा दोष नहीं। शराब तो बहुत लोग पीते हैं। मैंने बहुत बड़े-बड़े लोगों को पीते हुए देखा भी है।

निशिकान्त बोला—नहीं सर। मेरा पीना कुछ और किस्म का है। एक गन्दा मामला है।

—वह कैसे ?

—देखिए, शराब तो सभी पीते हैं। पीने की चीज ही है। नहीं तो सरकार ने शराब की दुकानें क्यों खोली हैं। लेकिन मेरे पीने का ढंग कुछ और है। जिस दिन हाथ में पैसा आता है, उस दिन क्या तो बादशाह आलमगीर और क्या मैं ? और जब तक वे पैसे खत्म नहीं हो जाते, मुझे चैन नहीं पड़ता। फिर जब लटपटाते हुए घर लौटता हूं, मेरी जेब सपाट मैदान बनी रहती है।

—उसके बाद ?

—उसके बाद क्या होगा ? घर आकर कै करता हूं। उसे सरयू साफ करती है। बिस्तर, चादर, तकिया सब धोती है। बोलिए साहब, ऐसी हालत में किसका मिजाज ठीक रह सकता है। मेरी तो वही दशा है, खाना नहीं दे सकता, पर मालिक तो हूं ही, जुल्म तो कर ही सकता हूं।

मेरा घूमना तब तक खत्म हो चुका था। घर के पास पहुंच चुका था। निशिकान्त से मैंने कहा—अब मैं चलता हूं। मेरा घर आ गया है।

निशिकान्त बोला—अच्छा ? आपका घर कौन-सा है ?

उंगली से संकेत कर मैंने अपना मकान उसे दिखा दिया और कहा—इसी मकान के दुमंजिले पर रहता हूं, बाईं तरफ दरवाजा है।

निशिकान्त बोला—बड़ा अच्छा मकान है। सरयू को भी कलकत्ता में एक अच्छा मकान बनाने का बड़ा शौक था। सोचती थी—अच्छा खाएगी, अच्छा पहनेगी, अच्छी लड़की की तरह जीवन बिताएगी, पर यह सब कुछ भी नहीं हुआ, मुझ जैसे एक शराबी के हाथों पड़ गई।

अब तक मैंने अपना कुतूहल दबा रखा था, पर मुझसे और न रहा गया। पूछा—तुमसे एक बात पूछना चाहता हूं, निशिकान्त !

—बोलिए न सर, बोलिए !

—अगर तुम्हारे पास बहुत-से रुपये हों तो क्या तुम्हारी पत्नी तुम्हारे पास फिर लौट आएगी ?

—क्यों सर ? आप मुझे पैसे देंगे क्या ?

—मैं तुम्हें पैसे दूं या न दूं, जो पूछ रहा हूं पहले उसका जवाब दो।

निशिकान्त कुछ सोचने लगा। उसके बाद बोला—आप कितना रुपया दे सकते हैं ? सौ-दो सौ, पांच सौ देने से तो काम नहीं बनने का। सरयू की मांग बहुत बड़ी है। इसके अलावा मैं शराबी आदमी भी हूं। आप जो कुछ भी देंगे उसे मैं शराब में उड़ा दूंगा। हाथ में कुछ भी नहीं बचेगा। किसी ज्योतिषी ने मुझे बताया भी था कि लाख-लाख रुपये आने पर भी मेरे हाथ में कुछ नहीं टिकेगा। इससे अच्छा तो यह होगा कि रुपये आप सरयू के हाथों में दे दीजिए। वह अच्छी तरह सम्भालकर गृहस्थी चलाएगी।

मैंने कहा—लेकिन अभी तो वह सामने है नहीं और न ही मेरे पास उतना रुपया है कि तुम दोनों की गृहस्थी का खर्चा चला सकूं।

—तो फिर एक काम कीजिए सर ! निशिकान्त ने बीच ही में मुझे रोककर कहा।

—क्या काम ?

निशिकान्त बोला—बाद में आप सरयू को हाथों में जो दीजिएगा सो तो दीजिएगा ही, लेकिन अभी अगर कुछ रुपये मुझे दें तो मैं जी जाऊंगा। सड़क पर भटकना नहीं पड़ेगा।

मैं यह सुनकर चुप रहा। निशिकान्त यह देखकर बोला—आप यह मत सोचिए कि आपका पैसा लेकर मैं कहीं भाग जाऊंगा। जैसे भी होगा, रुपया जरूर वापस कर दूंगा।

दुनिया में कितने विचित्र लोग रहते हैं, कभी-कभी मैं यही सोचता रहता हूं। यह निशिकान्त सोच क्या रहा है? क्या मैं इतना ही बेवकूफ हूं कि एक चरित्रहीन शराबी आदमी को पैसे देकर उसकी सहायता करूंगा? लेकिन निशिकान्त को मैं और अच्छी तरह जानना चाह रहा था। ऐसे चरित्र और इस तरह के जीवन को लेकर ही तो दुनिया बनी है। रास्ते पर, ट्रेन में, बस, ट्राम, हवाई जहाज, नदी के घाट सभी जगह ऐसे ही लोग बिखरे पड़े हैं। जनसंख्या के निन्यानवे प्रतिशत लोग तो ऐसे ही लोग हैं। इन्हें वोट देने का अधिकार है, इनके वोट से किसी देश या राष्ट्र का भाग्य निर्धारित होता है, इसलिए ये अवहेलना की वस्तु नहीं। इनसे घृणा करें या इनकी अवहेलना, पर इन्हें ही लेकर हमारा समाज, हमारा राष्ट्र बना है। अगर किसी भी दिन ये ही सब मिलकर एक दल बना लें तो इन्हींमें से कुछ लोग देश के नेता बन बैठेंगे और हमपर शासन चलाएंगे। तब?

मैंने पूछा—कितने रुपयों से तुम्हारा काम चल जाएगा?

निशिकान्त बोला—बीस रुपये के हिसाब से मकान के किराये के लिए एक सौ बीस रुपये, छह महीनों का बाकी जो पड़ा है—उसके बाद होटल में खाता हूं, पचास रुपये वहां देने हैं, फिर खेतर के यहां चाय पीता हूं, बीस रुपये उसे देने हैं। इस प्रकार कुल दो सौ देने से अभी काम निकल सकता है।

मैंने कहा—अच्छा, किसी दिन सुबह यहां आ जाना।

निशिकान्त अधीर होकर बोला—कब आऊं कहिए? कितने बजे?

—दो-चार दिन बाद आना। कहकर मैं घर चला गया।

६

उसके बाद चौबीस घण्टे भी नहीं बीते थे कि सुबह-सुबह किसीने दर-

वाजा खटखटाया।

दरवाजा कानाई ने खोला।

एक बुड्ढा आदमी था। कानाई ने पूछा—आप कौन हैं? किससे मिलना चाहते हैं?

मैं सारी बातें सुन रहा था, पर समझ नहीं पा रहा था कि आखिर निशिकान्त का मकान-मालिक मेरे पास क्यों चला आया?

बूढ़े सज्जन ने कानाई से कहा—बाबू को जाकर बोलो—मल्लिक साहब आए हैं। एक बार भेंट करके वापस चले जाएंगे।

फिर मेरे कमरे में आकर बोले—मुझे देखकर आपको हैरानी तो हो रही होगी, पर मैं आए बिना रह नहीं सका। उस दिन निशिकान्त के सामने मैं खुलकर आपको कुछ बता नहीं सका था।

मैंने कहा—आप बैठिए।

मल्लिक साहब बोले—हां, बैठना ही पड़ेगा, क्योंकि मुझे बहुत-कुछ बताना है।

—बोलिए! मैं भी सुनना चाहता हूं।

मल्लिक साहब बोले—उस नालायक से आपका परिचय कैसे हुआ? एक नम्बर का नीच आदमी है। अगर ठीक से उसे जानते तो आप बात भी नहीं करते। उसकी छाया में भी पाप है।

—वह किस तरह?

—वही तो बताने आया हूं। पर आपने यह तो पूछा ही नहीं कि आपका पता मुझे मालूम कैसे हुआ।

—हां, मैं अभी यही सोच रहा था, क्योंकि उस दिन से पहले तो आपने मुझे कभी देखा भी नहीं था और पहचानते भी नहीं थे।

मल्लिक साहब बोले—उसी नालायक निशिकान्त ने बताया है। आपने उसे दो सौ रुपये देने का वादा किया है न?

—वह मुझसे रुपये मांग रहा था, इसलिए मैंने यहां आने के लिए कहा था।

—आप सचमुच ही उसे रुपये देंगे?

मैंने कहा—उसे सचमुच जरूरत है। और फिर किसी भी दिन आप

उसे घर से निकाल बाहर करेंगे, फिर वह जाएगा कहां। कोई और जगह भी तो नहीं है उसकी।

—यह बात है। इसीलिए कल इतना टर्र-टर्र कर रहा था। मुझे गाली दे रहा था। कह रहा था, वह आपका बहुत पुराना दोस्त है, बचपन का साथी। आप दोनों एक ही क्लास में, एक ही स्कूल में पढ़ते थे। उसीसे तो मुझे आपका पता मालूम हुआ।

मैंने कहा—अगर मैं उसे रुपये दे देता हूं तो इसमें तो आपका फायदा ही है। आपको मकान का किराया मिल जाएगा।

—आप क्या पागल हो गए हैं ? मल्लिक साहब व्यंग्य की हंसी हंस रहे थे। फिर बोले—आप तो बहुत बड़े लेखक हैं। मैं तो सर, ज्यादा पढ़ा-लिखा आदमी नहीं हूं और सच पूछिए तो किताब-उताब पढ़ने का वक्त भी नहीं मिलता। मैं तो मेहनत की रोटी खाता हूं। पर ताज्जुब है, आप लेखक होकर भी निशिकान्त को नहीं पहचान सके ? आप क्या सोच रहे हैं कि आपके दिए रुपयों से वह किराया चुकाएगा ?

—लेकिन किराया देने के लिए ही तो वह रुपये मांग रहा है। मुझे तो उसने ऐसा ही कहा है कि वह मकान का किराया, होटल में खाने और चाय के पैसे सब चुका देगा।

मल्लिक साहब बोले—फिर तो हो चुका। वह आदमी अगर इतना भला होता तो फिर कलियुग ही क्यों रहता। मैं पिछले छह महीनों से उसे देख रहा हूं। अपनी पत्नी के जरिये उसने बहुत पैसा कमाया है। मैं बुड्ढा आदमी हूं। उसने तो अपनी पत्नी को मेरे पीछे भी पड़ने के लिए उकसाया था। घृणा की बात क्या बताऊं, इन बातों को कहने में भी मुझे शर्म आती है।

मैंने पूछा—उसकी पत्नी कहां गई हुई है ?

मल्लिक साहब बोले—उसने अब किसी और बड़े कप्तान को पकड़ा है।

—वह कैसे ?

—अरे साहब ? कलकत्ता में मालदारों की कमी है क्या ? निशिकान्त ने क्या-क्या तमाशा नहीं किया। अगर आप सब कुछ सुनेंगे तो चौंक उठेंगे।

यहां के बहुत-से मकानों में वह किराये पर रह चुका है, और हर जगह मकान-मालिक को चकमा देकर भाग गया है। उसकी पत्नी ही उसका मूल-धन है। उसीको खटवाकर उसकी ज़िन्दगी की गुज़र हो रही है। इतनी बातें पहले मुझे भी नहीं मालूम थीं। उसने मुझसे आकर कहा कि वह पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर कलकत्ता आया है। सिर छुपाने के लिए कोई जगह चाहिए। उसकी पत्नी की दशा देखकर मुझे दया आ गई, इसीलिए सस्ते में रहने दिया।

मैंने कहा —लेकिन आपको भी तो किराये के रुपये मिलने ही चाहिए। रुपये न मिलने पर आप भी उसे छोड़ेंगे क्यों ? किसी भी दिन उसके नाम मुकदमा दायर कर देंगे—फिर क्या होगा ?

मल्लिक साहब बोले—नहीं साहब, मुकदमे वगैरह की तरफ मैं नहीं जाता। वकील, मुंशी, पेशकारों के चक्कर में मेरा घर-बार जो कुछ है, वह भी सब बर्बाद हो जाएगा। यह सब मैं नहीं चाहता। मैं तो बस इतना ही चाहता हूं कि वह मेरा घर छोड़ दे। बदमाश गाय से तो खाली गौशाला ही अच्छी है। मुझे ऐसा किरायेदार नहीं चाहिए।

मैंने पूछा—लेकिन उसकी पत्नी आजकल है कहां, यह तो आपने बताया ही नहीं। क्या निशिकान्त को छोड़ गई है ?

—छोड़ क्यों जाएगी ? निशिकान्त ने ही उस मुवक्किल के यहां अपनी पत्नी को रखा है। सोचा था ख़ूब पैसा कमाएगा, पर मामला बैठा नहीं। उसकी पत्नी का नाम सरयू है। अब वह भी चालाक बन गई है। ऐसे शराबी पति को आखिर कब तक बर्दाश्त करेगी। अब वह निशिकान्त को एक पैसा भी नहीं देती।

—पैसा क्यों नहीं देती ?

मल्लिक साहब बोले—जिस कारण से मैं आपको उसे पैसे देने के लि मना कर रहा हूं, वही कारण है। पैसा देने पर वह निशिकान्त के पा तो रहेगा नहीं, सब शराब पीने में चला जाएगा। पहले वह बहुत पै देती थी। जी-जान से उसकी सेवा करती थी। खुद भूखी रहकर निशिका को शराब के लिए पैसा देती थी। लेकिन मनुष्य के बर्दाश्त की भी क सीमा होती है। इसीलिए वह अब उसपर बिल्कुल ध्यान नहीं देती। जान

है कि निशिकान्त सुधरने वाला नहीं है। वह शराब नहीं छोड़ सकता, भले ही उसकी जान चली जाए।

मैंने पूछा—उसकी पत्नी क्या अब बड़े आराम के साथ दिन गुज़ार रही है ? आपको कुछ मालूम है ?

मल्लिक साहब बोले—आराम से क्यों नहीं रहेगी ? उसका अपना मकान है, गाड़ी है, नौकर-चाकर सभी कुछ है। अपने हाथ से तो उसे एक तिनका भी नहीं उठाना पड़ता—इतनी सुखी है।

—निशिकान्त वहां नहीं जाता ?

—जाएगा क्यों नहीं, धरना देकर पड़ा रहता है, पर अन्त में धक्के खाकर उसे वापस आना पड़ता है। और फिर धक्का लोग देंगे भी क्यों नहीं। वैसे आदमी को रोज-रोज कहां से कोई रुपया दे सकता है। शराबी की मांग का कोई अन्त भी होता है ? जैसे ही रुपया हाथ में पड़ता है, सब शराब पर खर्च कर डालता है। असल में वह है ही मनहूस।

इतना कहकर मल्लिक साहब जाने लगे। मुझे भी चैन मिला। सोचा सहानुभूतिवश अगर निशिकान्त को कुछ रुपये दे देता तो वह बेकार हो जाता।

मल्लिक साहब को जाते-जाते मैंने टोका—आपको तो काफी घाटा लगा। मकान का किराया आपको मिलेगा नहीं ?

मल्लिक साहब बोले—वह तो सर, मुझे ऐसे भी नहीं मिलने वाला था। अगर आप उसे रुपये उधार भी देते फिर भी मुझे कोई फायदा नहीं होता। नाहक आप ही के पैसे बर्बाद जाते। फिर थोड़ा रुककर बोले—उसकी पत्नी को जाकर भी मैं यही बात बता आया हूं।

—इसका मतलब उसकी पत्नी से आपकी भेंट होती है ?

मल्लिक साहब हंस पड़े। बोले—आपको खुलकर ही बताता हूं, वास्तव में मुझे कोई नुकसान नहीं उठाना पड़ रहा है। आप निशिकान्त को कुछ बताइएगा नहीं। उसकी पत्नी हर महीने का किराया मुझे दे देती है।

यह सुनकर मैं बड़ा हैरान हुआ। अगर किराये के पैसे उन्हें मिल ही जाते हैं तो फिर उस दिन चाय की दुकान पर उन्होंने निशिकान्त का अपमान क्यों किया ? *अजीब रहस्य है ? सारा मामला ही रहस्यमय है,*

यहां के बहुत-से मकानों में वह किराये पर रह चुका है, और हर जगह मकान-मालिक को चकमा देकर भाग गया है। उसकी पत्नी ही उसका मूल-धन है। इसीको खटवाकर उसकी जिन्दगी की गुजर हो रही है। इतनी बातें पहले मुझे भी नहीं मालूम थीं। उसने मुझसे आकर कहा कि वह पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर कलकत्ता आया है। सिर छुपाने के लिए कोई जगह चाहिए। उसकी पत्नी की दशा देखकर मुझे दया आ गई, इसीलिए सस्ते में रहने दिया।

मैंने कहा—लेकिन आपको भी तो किराये के रुपये मिलने ही चाहिए। रुपये न मिलने पर आप भी उसे छोड़ेंगे क्यों? किसी भी दिन उसके नाम मुकदमा दायर कर देंगे—फिर क्या होगा?

मल्लिक साहब बोले—नहीं साहब, मुकदमे वगैरह की तरफ मैं नहीं जाता। वकील, मुंशी, पेशकारों के चक्कर में मेरा घर-बार जो कुछ है, वह भी सब बर्बाद हो जाएगा। यह सब मैं नहीं चाहता। मैं तो बस इतना ही चाहता हूं कि वह मेरा घर छोड़ दे। बदमाश गाय से तो खाली गौशाला ही अच्छी है। मुझे ऐसा किरायेदार नहीं चाहिए।

मैंने पूछा—लेकिन उसकी पत्नी आजकल है कहां, यह तो आपने बताया ही नहीं। क्या निशिकान्त को छोड़ गई है?

—छोड़ क्यों जाएगी? निशिकान्त ने ही उस मुवक्किल के यहां अपनी पत्नी को रखा है। सोचा था खूब पैसा कमाएगा, पर मामला बैठा नहीं। उसकी पत्नी का नाम सरयू है। अब वह भी चालाक बन गई है। ऐसे शराबी पति को आखिर कब तक बर्दाश्त करेगी। अब वह निशिकान्त को एक पैसा भी नहीं देती।

—पैसा क्यों नहीं देती?

मल्लिक साहब बोले—जिस कारण से मैं आपको उसे पैसे देने के लिए मना कर रहा हूं, वही कारण है। पैसा देने पर वह निशिकान्त के पास तो रहेगा नहीं, सब शराब पीने में चला जाएगा। पहले वह बहुत पैसा देती थी। जी-जान से उसकी सेवा करती थी। खुद भूखी रहकर निशिकान्त को शराब के लिए पैसा देती थी। लेकिन मनुष्य के बर्दाश्त की भी कोई सीमा होती है। इसीलिए वह अब उसपर बिल्कुल ध्यान नहीं देती। जान गई

है कि निशिकान्त सुधरने वाला नहीं है। वह शराब नहीं छोड़ सकता, भले ही उसकी जान चली जाए।

मैंने पूछा—उसकी पत्नी क्या अब बड़े आराम के साथ दिन गुज़ार रही है? आपको कुछ मालूम है?

मल्लिक साहब बोले—आराम से क्यों नहीं रहेगी? उसका अपना मकान है, गाड़ी है, नौकर-चाकर सभी कुछ है। अपने हाथ से तो उसे एक तिनका भी नहीं उठाना पड़ता—इतनी सुखी है।

—निशिकान्त वहां नहीं जाता?

—जाएगा क्यों नहीं, धरना देकर पड़ा रहता है, पर अन्त में धक्के खाकर उसे वापस आना पड़ता है। और फिर धक्का लोग देंगे भी क्यों नहीं। वैसे आदमी को रोज़-रोज़ कहां से कोई रुपया दे सकता है। शराबी की मांग का कोई अन्त भी होता है? जैसे ही रुपया हाथ में पड़ता है, सब शराब पर खर्च कर डालता है। असल में वह है ही मनहूस।

इतना कहकर मल्लिक साहब जाने लगे। मुझे भी चैन मिला। सोचा सहानुभूतिवश अगर निशिकान्त को कुछ रुपये दे देता तो वह बेकार ही जाता।

मल्लिक साहब को जाते-जाते मैंने टोका—आपको तो काफी घाटा लगा। मकान का किराया आपको मिलेगा नहीं?

मल्लिक साहब बोले—वह तो सर, मुझे ऐसे भी नहीं मिलने वाला था। अगर आप उसे रुपये उधार भी देते फिर भी मुझे कोई फायदा नहीं होता। नाहक आप ही के पैसे बर्बाद जाते। फिर थोड़ा रुककर बोले—उसकी पत्नी को जाकर भी मैं यही बात बता आया हूं।

—इसका मतलब उसकी पत्नी से आपकी भेंट होती है?

मल्लिक साहब हंस पड़े। बोले—आपको खुलकर ही बताता हूं, वास्तव में मुझे कोई नुकसान नहीं उठाना पड़ रहा है। आप निशिकान्त को कुछ बताइएगा नहीं। उसकी पत्नी हर महीने का किराया मुझे दे देती है।

यह सुनकर मैं बड़ा हैरान हुआ। अगर किराये के पैसे उन्हें मिल ही जाते हैं तो फिर उस दिन चाय की दुकान पर उन्होंने निशिकान्त का अपमान क्यों किया? अजीब रहस्य है? सारा मामला ही रहस्यमय है,

यह तो मैं उसी दिन समझ गया था जिस दिन सरयू को मोकामाघाट के स्टेशन पर देखा था।

टालीगंज का फ्लैट छोड़कर अब मैं माणिकतला में आ गया था। यहां आकर भी संयोग से निशिकान्त के साथ भेंट हो गई। मैं इन घटनाओं के पीछे नहीं भाग रहा था, घटनाएं ही मेरे पीछे दौड़ रही थीं।

मैंने सोचा कि अगर इस घटना को लेकर कोई कहानी या उपन्यास लिखूं तो कैसा रहेगा? मैंने इसी तरह तो अपने हर उपन्यास का प्लाट खोजा है और फिर उसमें कल्पना का मसाला डालकर उसे रोचक बनाया है। और फिर अन्त में अपनी ओर से उसमें एक महान वक्तव्य भी जोड़ दिया है।

सच तो यह है कि अगर मल्लिक साहब से मेरी भेंट नहीं होती तो यह सारी बात इतनी जटिल और रहस्यमय नहीं हो पाती। मल्लिक साहब ने ही घटना की गति को दूसरी तरफ मोड़ दिया। मैं थोड़ा आग्रह दिखाकर बोला—मल्लिक साहब, आप इतनी जल्दी क्यों उठ गए?

मल्लिक बाबू बोले—नहीं साहब, मुझे मेहनत की रोटी खानी पड़ती है। बैठने की फुर्सत कहां। पर फिर भी मल्लिक साहब बैठ ही गए। ताज्जुब तो मुझे इस बात का हो रहा था कि जिस आदमी को रोटी के लिए चौबीसों घण्टे मेहनत करनी पड़ती है उसे एक बार के सिवा दुबारा बैठने के लिए मुझे नहीं कहना पड़ा।

मैंने पूछा—चाय पीजिएगा?

—पी सकता हूं। कोई दिक्कत तो नहीं होगी?

—दिक्कत की क्या बात है? मैंने कानाई को चाय और बिस्कुट लाने के लिए कह दिया।

मल्लिक महाशय विनय के अवतार बने बैठे थे। बोले—बिस्कुट की क्या ज़रूरत थी? केवल चाय ही ठीक थी। लेकिन अन्त तक मल्लिक बाबू ने चाय भी पी और बिस्कुट खाए। बिस्कुट को चाय में डुबाकर बड़ी तसल्ली से खा रहे थे। चाय पीकर बोले—सारी बातें तो आप लोगों को कहनी भी मुश्किल हैं, क्योंकि, सर, पता नहीं इन्हीं बातों को लेकर आप कोई कहानी ही लिख डालें। फिर लोग समझ जाएंगे कि मैंने ही सारी बातें

आपको बताई हैं।

—आपको डरने की कोई बात नहीं। अगर मैं लिखूंगा भी तो, नाम-धाम सब कुछ बदल दूंगा। कहानी पढ़कर आप स्वयं ही नहीं समझ पाएंगे कि यह आपकी ही कही हुई कहानी है। अब बताइए कि निशिकान्त की पत्नी सरयू के साथ आपकी मुलाकात होती है?

मल्लिक साहब बोले—मुलाकात तो होती ही है, नहीं तो मकान का किराया मुझे कैसे मिलता? और केवल मकान का किराया ही नहीं, निशिकान्त के महीने-भर का होटल में खाने का खर्च, चाय के पैसे सब मेरे हाथों में उसकी पत्नी रख देती है और साथ में यह भी कह देती है कि किसी-को मालूम नहीं होना चाहिए कि पैसे चुका दिए गए हैं। मैंने भी होटल वाले और चाय वाले को कह दिया है कि निशिकान्त बाबू को ये बातें वे नहीं बताएं, उलटे बीच-बीच में पैसे के लिए तकाजा भी करते रहें। एक बात और भी है साहब। उसकी पत्नी ने मुझे बार-बार कह दिया है कि किसी भी तरह यह शराब न पीने पाए। इसलिए वह उसे कभी नकद रुपया नहीं देती।

मैंने पूछा—तो फिर निशिकान्त आजकल शराब नहीं पीता?

—पीता क्यों नहीं? पीता तो है ही। पैसे उसको कभी-कभार मिल ही जाते हैं। जैसे कि किराया देने के नाम पर आपसे ही रुपये उधार मांग रहा था। ऐसे ही पैसों से वह शराब पीता है,—आपको कुछ मालूम भी है?

—लेकिन मैं उसे उधार दे दूंगा, यह आपको कैसे मालूम हुआ?

—उसीने तो बताया है। मैंने जैसे ही किराये के लिए तकाजा किया, उसने झट से कह दिया कि आपने उसे पैसे उधार देने का वादा किया है।

मुझे बड़ा अजीब लग रहा था। जो पत्नी निशिकान्त को छोड़ गई है, फिर उसकी भलाई के लिए वह इतना सोचती क्यों है? निशिकान्त को कहीं तकलीफ न उठानी पड़े, इसलिए मल्लिक साहब के हाथ में रुपये देती रहती है, निशिकान्त भूखा रहेगा यह सोचकर होटल में खाने के पैसे भर देती है, और चाय का उधार चुकाती है। उसे आपत्ति है तो केवल शराब

की लत पर। बड़ा ही विचित्र चरित्र है, और उससे भी अजीब है यह दाम्पत्य-जीवन। जिस घर से निकल गई है, उसी घर के लिए फिर किस बात का लगाव है? वह नये बाबू के साथ भी खुश रह सकती है। अपना घर, अपनी साड़ी, आराम का भोजन—इतने सारे सुख के बीच वह खुद विभोर रह सकती है। जो पति भरपेट खाना नहीं जुटा सकता, उसके प्रति यह कैसा लगाव? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

मल्लिक साहब चुपचाप बैठे थे। मैंने उनसे कहा—सारी बातें बताकर आपने मेरा भला ही किया है। मैं निशिकान्त को रुपये नहीं दूंगा।

—बिलकुल नहीं। सरयू ने मुझसे आपको यही कहलवाया है। मैं चकित रह गया। बोला—क्या सरयू को पता है कि मैंने निशिकान्त को पैसे देने का वादा किया है?

मल्लिक साहब बोले—जानती तो है। मैं खुद जाकर सब कुछ बता आया हूं। चाय की दुकान पर जो तमाशा हुआ था, मैंने उसे जाकर बताया। वह तो आपको अच्छी तरह पहचानती भी है।

मैंने कहा—हां। जब मैं टालीगंज में रहता था, तब दो-एक बार उससे मेरी भेंट हुई थी।

मल्लिक साहब बोले—बड़ी अच्छी लड़की है साहब। बहुत ही नरम दिल की है। ऐसे शराबी के हाथों न पड़ती तो बेचारी इतना कष्ट भी न पाती। खैर, जो कुछ हुआ, सो तो हुआ ही। बेचारी अभी थोड़ी चैन से है। पेट-भर खाना तो मिल जाता है।

—सरयू क्या किसीके यहां रखैल है?

मल्लिक साहब बोले—छिः-छिः। ऐसी बात जबान पर मत लाइए बाबू! निशिकान्त आवारा, शराबी, बदचलन हो सकता है, पर सरयू कोई ऐसी-वैसी नहीं है।

मैंने पूछा—फिर?

मल्लिक साहब बोले—असल बात मैं बताता हूं। एक दिन अखबा में एक विज्ञापन निकला था कि एक बूढ़े विधुर को अपने नाबालिग बच्च की देख-रेख के लिए किसी ऐसी महिला की जरूरत है जो उसके बच्चों अपने बच्चों की तरह पालन-पोषण करे। सरयू ने भी एक दरखास्त

और संयोग देखिए, हज़ार दरख़ास्तें आईं पर उस सज्जन ने सरयू को ही चुना। नर्स या गवर्नेस की हैसियत से घर पर ही रहने की उसकी व्यवस्था भी कर दी।

—उसके बाद ?

मल्लिक साहब बोले—उसके बाद निशिकान्त को छोड़कर सरयू एक दिन अपने काम पर चली गई, और तब से ही दोनों में खटपट चल रही है। पहले-पहल तो निशिकान्त रोज़ ही पत्नी के पास जाकर धरना दिया करता था, रुपया माग-मांगकर उसे तंग करता था। सरयू भी पहले रुपया दे दिया करती थी, लेकिन हाथ में पैसे पड़ते ही आदत से मजबूर निशिकान्त सीधा शराबख़ाने चल देता। तब से सरयू ने उसके हाथों में पैसा देना बिल्कुल बन्द कर दिया है। जो कुछ देती है, मेरे हाथ में देती है। अक्सर मुझे बुला भेजती है, और निशिकान्त का हालचाल पूछती है।

—आप अक्सर वहां जाते रहते हैं ?

मल्लिक साहब बोले—क्यों नहीं जाऊंगा, बोलिए ? दरबान भेजकर बुलवाती है। निशिकान्त जब घर पर नहीं रहता तब बुलवाती है। कल ही तो उसने बुलवाया था।

—कल ?

—हां, कल ही की तो बात है। मैं गया। जाते ही पूछा कि निशिकान्त कैसा है ? मैंने चाय की दुकान पर हुई सारी बातें बताईं। फिर आपकी बात भी बताई। तब सरयू ने कहा कि वह आपको जानती है।

मैंने कहा—मामूली जान-पहचान है। कोई ख़ास बात नहीं। दो-तीन बार तो कुल उसे देखा ही है।

—सरयू भी यही कह रही थी। आपकी तारीफ़ भी कर रही थी।

—मेरी तारीफ़ ? मैंने प्रशंसा के लायक तो अब तक कोई काम किया नहीं।

मल्लिक साहब बोले—यह बात नहीं। सच पूछिए तो आजकल कौन किसकी तारीफ़ करता है ? किसीकी भलाई किसीसे नहीं देखी जाती। आपने कभी सरयू का बड़ा उपकार किया था। और जब मैंने उसे बताया कि निशिकान्त को आप उधार देने वाले हैं तब वह कातर स्वर में बोली—

ल्लिकजी, आप पी फटते ही उनके घर जाइए और उन्हें कहिए कि वह नशिकान्त को किसी भी हाल में रुपया नहीं दें। इसीलिए तो सारा काम-काज ठप्प करके सुवह-सुवह ही आपके पास दौड़ा आया हूं।

अव मल्लिक साहब चलने के लिए वाकई उठ खड़े हुए। ठीक उसी क्षण किसीने दरवाजा खटखटाया।

कानाई ने दरवाजा खोलकर पता नहीं क्या वातचीत की, फिर मेरे पास आकर बोला—आपसे कोई आदमी मिलना चाहता है।

—नाम पूछकर आओ।

कानाई आकर बोला—निशिकान्त वाबू आपसे मिलने आए हैं।

निशिकान्त का नाम सुनते ही डर से मल्लिक साहब का चेहरा फीका पड़ गया। बोले—मेरी खैरियत नहीं। अव क्या होगा?

फिर उन्हें कोई तरकीव सूझी होगी। धीरे से मुझसे कहा—आपके अन्दर वाले कमरे में छुप जाता हूं। नहीं तो मुझे देखकर हंगामा खड़ा कर देगा। कहकर झट से वह अन्दर वाले कमरे की तरफ चले गए।

कानाई दरवाजा खोल चुका था। निशिकान्त आया। विनयी और निरीह बनकर आया। दोनों हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम भी किया। फिर मेरे कहने की अपेक्षा किए विना ही धम् से कुर्सी पर बैठ गया, थोड़ी देर पहले तक जिसपर मल्लिक साहब बैठे हुए थे। पूछा—कैसे हैं आप?

—अच्छा हूं।

निशिकान्त तुरन्त बोल पड़ा—अच्छे हैं, जानकर जी में जी आया साहब। ऐसा युग आया है कि अच्छा रहना ही एक वेनियम-सा हो गया है। कहिए तो सर, क्या जमाना आया है? एक भी आदमी चैन से नहीं है। जिससे भी पूछता हूं—कैसे हैं आप? एक ही जवाव सुनने को मिलता है—कट रही है, किसी तरह से।

जवाव में मैं क्या कहता? चुप ही रहा।

निशिकान्त बोलता गया—अच्छा आदमी रह भी कैसे सकता है कहिए? साढ़े चार रुपये किलो चावल कितने लोग खरीद सकते हैं? पहले दो पैसे में एक कप चाय पीता था, आपने भी जरूर पी होगी। अव पच्ची पैसों से कम में नहीं मिलती। चाय वाले कहते हैं—चीनी का भाव पांच रुप

किलो हैं। फिर आप ही बताइए कौन-सी चीज़ बिना खाए आप रह सकते हैं? चावल, दाल, तेल, नमक, साग-सब्जी सभी तो दुर्लभ हो गए हैं। नमक की ही बात बताता हूं। एक दिन होटल में खाते समय मैंने नमक मांगा। होटल वाले ने कहा—नमक नहीं है। मुझे भी गुस्सा आ गया। बोला—नमक नहीं है मतलब?

होटल वाले ने कहा—नमक एक रुपया किलो है। थाली में एक्सट्रा नमक के लिए एक्सट्रा पैसा लगेगा। नमक एक रुपया किलो है।

—ज्यादा दाम देना पड़ेगा? मजाक है क्या—मैं भी चिल्लाने लगा। वे फिर मारने को दौड़े। देखिए न साहब, मेरे मुह में एक घूसा मारा और ऊपर से कहा—उधार का खाता है, ऊपर से यह शान। उस घूंसे को मैं संभाल न सका। एकदम गिर पड़ा।

निशिकान्त अपनी बातें विश्वास के साथ सुना रहा था पर मुझे उसकी बातों पर जरा भी विश्वास नहीं हो रहा था।

निशिकान्त थोड़ी देर तक मुझे देखता रहा, फिर बोला—मेरी बातों पर आपको विश्वास नहीं हो रहा है न?

मैंने पूछा—यह घटना कब हुई?

—कल साहब, कल। कल शाम को तो आपसे भेंट हुई ही थी। फिर रात के करीब आठ बजे जोरों की भूख लग गई। शाम से एक कप चाय और दो-तीन सिगरेटों के अलावा और कुछ भी नहीं जुटा था, इसलिए सोचा होटल में जाकर भर-पेट चावल खा लू। उसी समय यह घटना घटी। देखिए न, मेरा चेहरा देखिए—कहकर अपना मुंह मेरी ओर बढ़ा दिया। बोला—देखिए कैसा काला दाग पड़ गया है।

मैं बहुत देर तक उसका चेहरा देखता रहा, पर दो दिनों से जिसने दाढ़ी नहीं बनवाई है—उसके चेहरे में एक कोई काला-सा दाग मैं कैसे देख पाता?

—देख रहे हैं न? —निशिकान्त बकता ही गया। इस जमाने के लोग ही बदल गए हैं। आज को दुनिया इसे ही कहते हैं। इस दुनिया में कोई किसीका नहीं, कोई किसीका नहीं। जिसको अपनी पत्नी ही नहीं देखती, उसका जीवन ही क्या, और दुनिया ही क्या? समझे कुछ आप? आपको

कह देता हूं—अगर जरूरत पड़े तो आप अपने उपन्यास में भी लिख सकते हैं।

मैंने पूछा—क्या ?

—यही कि एक दिन सब कुछ ध्वस्त हो जाएगा। मैं, आप, सरयू, मल्लिक साहब कोई भी नहीं बचेगा। मेरी बात आप नोट कर लीजिए। जैसा ज़माना आ रहा है—धनी हो या गरीब, बड़ा हो या छोटा—कोई भी नहीं बचेगा। आपको शायद मेरी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है लेकिन इस गरीब की बात बासी हो सकती है, पर फलेगी ज़रूर।

मैं इतनी देर तक केवल यही सोच रहा था कि रुपया मांगने के पहले निशिकान्त कितनी बड़ी भूमिका बांध रहा है। रुपया मांगने ही के लिए वह आया है, यह तो पक्का था।

अचानक निशिकान्त बोला—आपने चाय पी ली है क्या ?

उसके बाद टेबल पर मल्लिक साहब की पी हुई चाय के खाली प्याले को देखकर बोला—आप चाय आलरेडी पी चुके हैं।

—हां।

निशिकान्त फिर भी सहमा नहीं। बोला—सुबह क्या आप एक ही कप चाय लेते हैं ?

—हां।

—फिर तो मुझे थोड़ा पहले आना चाहिए था। लेकिन बहुत-से लोग सुबह के वक्त दो बार चाय पीते हैं।

मैंने कहा—तुम चाय पीयोगे ?

—नहीं साहब। चीनी का दाम इतना बढ़ गया है। चाय कम कर देनी ही ठीक है पर···कुछ कहना चाह रहा था, पर संकोच में पड़ गया था।

मैंने कहा—कहो क्या कहना चाहते हो। संकोच करने की कोई बात नहीं है।

निशिकान्त बोला—आपके सामने संकोच भी कैसा ? आपको तो मेरी सारी खबर मालूम ही है। क्या छुपाऊं आपसे ? जिसकी औरत भाग जाए उसे कैसी शर्म ? मैं बेहया हूं सर, पक्का बेहया, शर्म-संकोच से ऊपर उ

गया हूं।

मैंने कहा—इतने नखरे की जरूरत नहीं, क्या कहने के लिए आए हो, वही बताओ।

निशिकान्त बोला—जब आप पूछ ही रहे हैं तो कहता हूं। सुबह मैं दो कप चाय लेता हूं। एक बार नींद से उठकर और एक बार अभी—

—तो यह बात साफ-साफ क्यों नहीं बता रहे थे कि तुम्हें एक कप चाय चाहिए।

—नहीं कहता, सर! पर आदत जो हो गई है। नशा हो गया है और नशाखोर को शर्म सोभती नहीं। आप ठीक ही कह रहे हैं।

मैंने कानाई को बुलाकर चाय बनाने के लिए कहा।

निशिकान्त बोला—चाय आने के पहले मैं आपसे निवेदन में एक बात रखूंगा।

—बोलो।

निशिकान्त ने सीधा कह डाला—मेरा रुपया क्या रेडी रखा है आपने?

निशिकान्त हमेशा इसी कायदे से बातें करता था, क्योंकि केवल बात और काम दो ही चीजें उसे आती थीं।

'मैंने कहा—रुपया तो मैं तुम्हें दूंगा नहीं, निशिकान्त! यह मैं तुम्हें साफ-साफ बता देना चाहता हूं।

—नहीं दीजिएगा?

निशिकान्त के सिर पर मानो बिजली गिर पड़ी। उसे विश्वास ही नहीं हुआ। बोला—रुपया नहीं दीजिएगा?

—नहीं।

निशिकान्त बोला—लेकिन क्यों? कल तो आपने कहा था कि आप रुपया देंगे?

—तुम झूठ कह रहे हो निशिकान्त! मैंने तुम्हें कभी नहीं कहा था कि मैं तुम्हें रुपये दूंगा?

—लेकिन आपके कहने के अनुसार मैं होटलवाले को और चायवाले को कहकर आया हूं कि मैं उनके पैसे चुका दूंगा।

—तुमने ऐसा कहा क्यों? उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूं।

निशिकान्त बोला—आप जिम्मेदार नहीं हैं तो क्या मैं जिम्मेदार हूं ?

—जरूर। तुम्हीं जिम्मेदार हो।

निशिकान्त बोला—वाह साहब ! उल्टा दबाव डाल रहे हैं मुझपर। नि सबको कह रखा है। अब अगर अपनी ही कही बात पर अमल नहीं कर सका तो लोग क्या मुझे गाली नहीं देंगे ?

—तुम्हारा मामला है, तुम स्वयं निपटाओ। मुझे क्या पड़ी है ?

निशिकान्त की दोनों आंखें भर आईं। उसके बाद बड़ी उदासी से पूछा—आप रुपया नहीं दे सकते ?

मैंने दृढ़ स्वर में कहा—नहीं।

निशिकान्त चौंक पड़ा। बोला—सच में नहीं देंगे ?

—नहीं ! किसी भी हालत में नहीं दूंगा।

निशिकान्त थोड़ी देर तक मेरा मुंह देखता रहा। फिर बोला—अगर आप मुझे रुपये नहीं देंगे तो मैं बहुत मुश्किल में पड़ जाऊंगा।

—क्यों ? मुश्किल किस बात की है ?

—कैसे मुश्किल नहीं है ? मैंने मल्लिक साहब को कह रखा है कि आप मुझे दो सौ रुपये दे रहे हैं, उसीमें से उनके छह महीने का किराया एक सौ बीस रुपये उन्हें दूंगा। फिर बाकी पैसों से होटल वाले तथा चाय वाले का उधार चुकाता। अब अगर रुपये नहीं मिलते हैं तो मुश्किल में नहीं पड़ूंगा ?

—लेकिन उन लोगों से झूठ कहने की जरूरत क्या थी ? मैं तुम्हें रुपये दूंगा ही, ऐसी तो कोई बात नहीं हुई थी।

—आपने वादा नहीं किया था ? अपनी छाती पर हाथ रखकर बोलिए तो सही कि आपने ऐसा नहीं कहा था !

मैंने कहा—मेरी कही बात ही काफी है।

निशिकान्त का चेहरा सूख गया। निराश होकर मेरी तरफ देखने लगा। मैंने देखा उसकी आंखों से आंसू की धार बह रही थी।

निशिकान्त बोला—मैं बहुत उम्मीद लेकर आपके पास आया था साहब। अब मैं क्या करूं ? किस मुंह से घर लौटूं, क्या खाऊं ? किस-किससे छुपता फिरूं ?

मैंने कहा—तुम और किसी जगह कोशिश करो। कलकत्ता में मेरे

अलावा भी बहुत-से लोग हैं।

निशिकान्त तब भी खड़ा रहा।

मैंने कहा—तुम अब जा सकते हो निशिकान्त। मैं काम पर बैठूंगा। यह कहकर मैंने कागज़-कलम सामने खींचे।

निशिकान्त बोला—एक काम कीजिए सर, दो सौ अगर नहीं दे सकते तो डेढ़ सौ ही दीजिए।

—मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकता।

निशिकान्त हैरान रह गया। बोला—मैं तो कम ही मांग रहा हूं सिर्फ डेढ़ सौ रुपये। वे भी नहीं दे सकते?

मैंने फिर कहा—मैं तुम्हें एक रुपया भी नहीं दूंगा।

निशिकान्त बोला—ठीक है। आप सिर्फ मल्लिक साहब के मकान के किराये के पैसे दे दीजिए। कम से कम उस बुड्ढे के मुंह पर फेंक सकूं ताकि उसके मुंह पर जूतियां पड़ें। बुड्ढा नम्बरी बदमाश है। कई महीनों से मुझे परेशान कर रखा है।

—मैंने तुम्हें कहा न कि मैं एक रुपया भी तुम्हें नहीं दे सकता। क्यों मुझे परेशान कर रहे हो।

—आप मुझे सिर्फ सौ रुपये ही दे दीजिए। आप कम से कम मेरी एक बात को तो रखिए।

मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था। कहा—मुझे परेशान मत करो। मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दूंगा। तुम अपनी औरत को भाड़े पर लगाकर पैसा कमाने का धन्धा करना चाहते थे? तुम्हें जेल भेजना चाहिए, समझे?

—क्या कहा आपने? निशिकान्त ने पूछा।

मैंने कहा—तुम अपनी पत्नी को कमाने का माध्यम बना रहे थे। मुझे सब कुछ मालूम है। तुम्हें इसका दण्ड मिलना चाहिए।

निशिकान्त बोला—आप एक विवेचक बुद्धिमान् आदमी होकर ऐसी बातें कर रहे हैं। बताइए आपको यह सब किसने कहा है? बोलिए? मल्लिक यहां आया था?

—जानकर क्या करोगे?

—जिसने भी आपको यह सब बताया है मुझे उसका नाम बताइए।

उसकी गर्दन पकड़कर उसकी नाक अगर आपके पैरों पर नहीं रगड़वाई तो देख लीजिएगा ! आप सिर्फ नाम बताइए। जरूर उस हरामजादे मल्लिक का ही काम है। अभी सामने आए तो उसके बाप को भी देख लूंगा।

मैंने कहा—तुम्हारी पत्नी सरयू ने ये बातें बताई हैं।

—सरयू ? सरयू ने कहा है ?

—हां। सरयू के पास जाने की तो तुममें हिम्मत है नहीं। अगर हिम्मत रहती तो अभी चले जाते।

निशिकान्त बोला—आप समझते हैं, हिम्मत नहीं है ? मैं अभी उसके पास जा रहा हूं, अभी। जाकर जरूर पूछूंगा। जिसके लिए मैंने चोरी की है, वही मुझे चोर बता रही है ? आपको मालूम है, अगर उस दिन मैं नहीं रहता तो सरयू भूखी मर जाती। दर-दर भीख मांगती। आज मुझे ही बदनाम कर रही है। मैं भी देख लूंगा। अभी जाता हूं।

जाते हुए भी वह रुक गया। बोला—बात जब उठी ही है तो आपको बताता हूं। इसी निशिकान्त ने सरयू के लिए क्या नहीं किया है। जब पाकिस्तान से आई थी—मुझे सड़क पर मिली थी।

—क्या बोल रहे हो तुम ?

—ठीक कह रहा हूं साहब। झुण्ड का झुण्ड हम शरणार्थियों का दल भारत आ रहा था। कितने ही लोग रास्ते में मर गए। कितने लोगों को मार दिया गया। उसी समय खान और पठान लोग उसे पकड़कर ले जा रहे थे।

—पठान लोग ?

—हां, पाकिस्तान के पठान।

—क्यों ? क्यों पकड़कर ले जा रहे थे ?

निशिकान्त बोला—अरे साहब, इतनी खूबसूरत औरत को देखकर लालच नहीं होगा। वे भी तो आदमी हैं। यह देखते ही मैं दौड़ा गया। मुझे तो वे लोग मार ही डालते। पर मैंने जान की परवाह नहीं की। किसी लड़की का सर्वनाश मैं अपनी आंखों से नहीं देख सकता। मैं भी तो आदमी हूं। मेरे भी तो मां, बहन और भतीजियां थीं। उन्हें भी तो लोगों ने इसी तरह मारा था। मैं उनपर झपट पड़ा, खाली हाथों। उनके हाथों में हथियार थे।

मैंने विनती की—कमाण्डर साहब, उसे छोड़ दीजिए। उसके बदले जो चाहिए मैं दूंगा। मेरे पास कुछ सोना और कुछ नकद रुपये थे। मैंने उसे उन लोगों को दे दिया और उसके बाद उनके पैर पकड़कर कहा—यह मेरी पत्नी है हुजूर! सब कुछ ले लीजिए मगर मेरी पत्नी को छोड़ दीजिए।

निशिकान्त की बात मुझे जासूसी कहानी की तरह लग रही थी। मैं मोहित होकर सुन रहा था। पूछा भी—ये सारी बातें सच हैं?

निशिकान्त ने अचानक मेरे पैर छू लिए। बोला—आपके चरण छूकर कहता हू—सब सच-सच बता रहा हू। सरयू के लिए मैंने जो कुछ किया वह उसके बाप-भाई भी नही कर सकते थे।

मैंने पूछा—उसके बाद?

—उसके बाद क्या? कुछ लोग और आ जुटे। सभीने कहा—सरयू इसकी पत्नी है। हम इन्हें जानते हैं, छोड दीजिए हुजूर! सभीको सर्च किया गया। कुछ न कुछ धन सबके पास से मिला। रुपये-पैसे, सोना-चांदी के लोभ से या दया से, पता नही क्यों उन लोगों ने सरयू को छोड दिया। मैं सरयू को लेकर कलकत्ता आ गया। सोचा था, साहब, कलकत्ता आना यानी कि स्वर्ग पहुच जाना। पर कलकत्ता इतना बड़ा नरक है, यह मैं नहीं जानता था।

—क्यों? इसे नरक क्यो कह रहे हो?

—नरक नही कहूंगा? नरक ही तो है। इसीलिए तो किसी खूबसूरत औरत को देखते ही लोगों की आंखें चमक उठती हैं। हम लोगों को भी पहले एक कैम्प मे जगह मिली। वहां शरणार्थियों को मुफ्त मे खाना मिलता था। मैंने उस कैम्प में लिखवाया कि मैं सरयू का पति हू। सरयू मेरी पत्नी है।

मैंने हैरान होकर पूछा—क्या कह रहे हो? इसके पहले तुम एक-दूसरे को जानते तक नही थे?

निशिकान्त बोला—परिचय तो दूर की बात है, इससे पहले सरयू को मैंने कभी देखा तक नही था। वह भी मुझे नहीं जानती थी। वह फरीदपुर या ऐसे ही कही की रहने वाली थी, और मेरा घर बारिसाल। जान-पहचान का सवाल ही नही उठता। लेकिन जब यहा आना पड़ा तो खाते मे दोनों का

एक ही परिचय भी देना पड़ा। नहीं तो सभी सन्देह करते। इसीलिए पति-पत्नी के रूप में नाम लिखा दिया।

सरयू ने मुझसे कहा कि खाते में तुमने मुझे अपनी पत्नी बताया है, लेकिन बाद में अगर किसीको पता चला तो !

—वह कैसे संभव है ! अगर हम दोनों में से किसीने कुछ नहीं कहा तो दूसरों को कैसे पता चलेगा ? मैंने उसे समझाया था।

सरयू बोली—लेकिन मैं अपने विवेक को क्या समझाऊंगी ?

—यह सुनकर मैं हैरान रह गया। उस समय तक मुझे क्या पता था कि यह लड़की इतनी जलील है। चेहरा-मोहरा देखकर तो भले घर की लग रही थी, देश-विभाजन के कारण बेसहारा हो गई थी।

मैंने कहा—कैसा विवेक ? कहना क्या चाहती हो ?

सरयू बोली—हां विवेक। घर-परिवार, रुपये-पैसे, आत्मीय-परिजन—मैंने सबको खो दिया है। लेकिन विवेक तो मैं यों नहीं खो सकती।

—तो फिर तुम्हीं कहो कि तुम्हें अपना विवेक न खोना पड़े, इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं ?

सरयू बोली—विवेक मेरी ही कोई निजी सम्पत्ति तो नहीं। तुम्हारा भी तो विवेक है, नहीं तो एक अनजान अज्ञात कुल की लड़की के लिए तुमने अपना सारा कुछ क्यों दे डाला ?

खैर साहब। मैं उस समय तुरन्त कालिज से पास करके निकला था। शराब वगैरह पीता नहीं था, इसलिए आदर्श के जोश में कहा—अपनी मां-बहन के लिए भी तो यही करता। तुम्हारे ही लिए कोई खास काम तो किया नहीं है।

सरयू बोली थी—लेकिन तुम मेरे साथ एक घर में सो रहे हो, यह कोई अच्छी बात है ?

मैंने उससे कहा—तुम अगर खराब समझती हो, तो खराब है। तुम अपने बिस्तर में सोती हो और मैं अपनी जगह। हां, तुम इतना कह सकती हो कि कमरा एक ही है। कमरे में कोई पार्टीशन नहीं, दीवार नहीं। रक्त-मांस का शरीर। कहीं किसी दिन तुमपर कोई अन्याय न कर डालूं ? तुम यही कहना चाहती हो न ?

सरयू बोली—केवल अपनी ही बात क्यों बता रहे हो। मैं भी तो रक्त-मास की बनी हू। किसी दिन मेरे पैर भी डगमगा सकते हैं।

—फिर क्या करना चाहती हो ?

—मैं क्या बताऊं। जैसा तुम कहोगे मैं वैसा ही करूंगी।

मैंने भी उसकी बात दुहराई। कहा—मैं भी तुम्हें वचन देता हूं। जो तुम कहोगी, मैं वही करूंगा।

इसके जवाब मे सरयू कुछ नही बोली थी।

उसी समय मैंने उससे कहा था—मुझसे शादी करने मे तुम्हें कोई आपत्ति है ?

सरयू चुप रही। सर नीचा करके अपने नाखून काटने लगी। मैं समझ गया कि मुझसे शादी करने मे सरयू को आपत्ति नही है। दूसरे ही दिन हम मां काली के मन्दिर मे गए।

मैंने दोनों हाथ जोडकर मां से कहा—मा, तुम्हें साक्षी रखकर मैं यह विवाह कर रहा हू। मैं गरीब आदमी हूं। घर-बार कुछ नही है। एक पैसा भी नही और इस दुनिया मे सरयू का भी कही कोई नही है। इसे विपत्ति मे सहारा देने के लिए ही मैं यह शादी कर रहा हूं। तुम कृपा-दृष्टि रखना, मा! …उसी दिन मां काली के मन्दिर मे मां के सामने हम दोनों की शादी हो गई। मैंने अपने हाथों से सरयू की माग में सिन्दूर डाल दिया। और इस तरह सबकी नजर बचाकर हम दोनो की शादी हो गई।

इतना कहकर निशिकान्त थोड़ी देर रुका। शायद थक चुका था, फिर मैंने ही पूछा—उसके बाद ?

निशिकान्त बोला—इतनी बातें मैं आपको बताना नहीं चाहता था, सर! लेकिन जैसे ही आपने कहा कि सरयू ने मेरे बारे में यह कहा है कि मैं शराबी हूं, जानवर हूं, उसीके जवाब मे मुझे यह सब कहना पड़ा। यह झूठ नही है कि मैं शराब पीता हूं। पर वह तो पीने की ही चीज है। सरकारी दुकान से शराब खरीदता हूं और पीता हूं। और ताज्जुब की बात जानते हैं—अगर शराब पीकर नशा चढ़ जाता है और कुछ बकने लगता हूं तो उसी सरकार की पुलिस हमें पकड़कर ले जाती है। ताज्जुब है सर! बड़ा ही विचित्र है सर! उससे भी विचित्र है कानून। आप भी तो कुछ

कहिए न ?

मैंने कहा—लेकिन तुम अपनी पत्नी के जरिये लोगों को धोखा देकर पैसा कमाते हो, इसे मैं क्या कहूं ?

—यह बात भी क्या सरयू ने आपसे कही है ? देख रहे हैं कि कितनी ज़लील औरत है। एक बार किसी सेठ से मेरा परिचय हुआ। एक दिन मेरे घर पर भी वह आया। सेठ बड़ा ही धनी था। उसकी कई गाड़ियां भी थीं···खैर सर ! मैंने आपको अपना सारा दुखड़ा कह सुनाया, जो किसी और को मालूम नहीं। सेठ के साथ अपने परिचय को मैंने तो स्वर्ग पाने के बराबर समझा। मैंने तो सर, आटे-दाल के भाव में ही जीवन गवां डाला।

इतना कहकर निशिकान्त धम से आराम से फिर कुर्सी पर बैठ गया और बोला—सर, कृपा करके अपने कानाई को कहिए कि एक कप चाय और दे जाएगा। और इतना कहकर जेब से उसने सिगरेट का पैकेट निकाला।

७

निशिकान्त की जबान से जो कहानी मैंने सुनी वह एक विचित्र कनानी है। उसी घटना के बाद से निशिकान्त के जीवन में उथल-पुथल शुरू हो गई।

तब तक रानाघाट के शरणार्थी-शिविर को छोड़कर वे लोग कलकत्ता आ गए थे। यादवपुर की किसी जबर्दस्ती दखल की गई कालोनी में एक छावनी भी बना ली थी। सरकार से सभीको 'डोल' मिलता था। उसी रुपये से किसीने सियालघाट में, किसीने कालीघाट में, तो किसीने गढ़िया-हाट में दुकानें खोलीं। कुछ ऐसी दुकानें कलकत्ता के फुटपाथ पर चल रही थीं। केवल निशिकान्त ही तब तक कुछ भी नहीं कर सका था।

निशिकान्त भी कुछ धन्धे की फिक्र में था। किसीने उसे हावड़ा के हाट से सस्ते में कपड़ा खरीदकर घर-घर फेरी लगाकर बेचने की सलाह दी। किसीने उससे बारुईपुर के हाट से साग-सब्जी लाकर कलकत्ता के बाजार में बेचने को कहा। एक दिन इसी तरह धन्धे के चक्कर में दिन-भर

थककर घर आकर उसने देखा कि एक आदमी उसकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ सरयू के साथ बात कर रहा है।

निशिकान्त को बात पसन्द नहीं आई। उसकी अनुपस्थिति का मौका ढूंढ कर उसकी ही पत्नी से न जाने क्या सलाह-मशविरा कर रहा था। यह कोई अच्छी बात नहीं थी।

निशिकान्त ने थोड़ा नाराज़ हो कर कहा—कौन हैं आप ?

वह आदमी बोला—जी ! मेरा घर भी बारिसाल के गैला गांव में पड़ता है। मैं भी आपकी तरह ही एक शरणार्थी हूं। सरकार मुझे दण्डकारण्य के 'माना कैम्प' में भेजना चाहती थी, पर मैं गया नहीं। उस लंकापुरी में जाएगा भी कौन ? मैंने यहीं पर एक कारोबार शुरू किया है।

—किस चीज़ का कारोबार है आपका ?

यही कहने के लिए ही तो आपके पास आया हूं। मेरे पीछे बहुत बड़ा और पैसेवाला एक सेठ है। मूलधन के लिए सोचना नहीं पड़ेगा।

—यह सब तो ठीक है। पर कारोबार किस चीज का है ···यह तो बताइए।

— आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? मैं यही कहने के लिए तो आपके घर आया हूं। इस मोहल्ले में इतने लोग हैं पर मैं आपके पास इसीलिए आया क्योंकि आप और हम एक ही गांव के हैं। अगर आप मेरी बात पर राजी हो जाते हैं तो एक साल के अन्दर आप दो मकान बनवा सकते हैं।

—वह कैसे ?

—आपकी पत्नी को अब तक मैं यही समझा रहा था। सबने धीरे-धीरे अपने मकान खड़े कर लिए हैं। लोग हज़ारों रुपये दोनों हाथों से लूट रहे हैं। फिर केवल हम ही क्यों भूखों मरें ? उसके बाद उसने जो बात बताई उसका सीधा-सा अर्थ था—तस्करी। कलकत्ता में कुछ जगहें ऐसी हैं, जहां थोड़ा एकान्त है और कुछ ज़मीन भी खाली पड़ी हुई है, खास कर गंगा के किनारे। दूसरी तरफ चूंचुड़ा, चन्दननगर से लेकर बरानगर तक और फिर कलकत्ता के मैदान के बगल में गंगा के किनारे-किनारे होकर खिदिरपुर तक। वहां से फिर आदिगंगा से लेकर कालीघाट-बेहला होकर टालीगंज, कुदघाटा, मुलपी और पश्चिम पुटियारी तक। इस तरफ महात्माओं की कई

और आसान रास्ता था। उसे तो किसीने अब तक बताया ही नहीं था। उस आगन्तुक ने निशिकान्त के मन को पढ़ लिया। बोला—आप ठहरे हमारे ही गांव के आदमी, इसलिए आप ही को कह रहा हूं, नहीं तो आदमियों की क्या कमी है।

निशिकान्त बोला—देखिए न! पत्नी को लेकर मुश्किल में पड़ गया हूं। अकेला होता तो कोई चिन्ता ही नहीं थी। जहां खुशी आ-जा सकता था।

—परिवार में और कौन-कौन है? कोई सन्तान?

—बच्चों का झंझट मुझे नहीं है। वे रहते तो मैं शायद कहीं का न रहता। खैर, है ही नहीं, तो बात ही खत्म। मुझे तो पैसे की कमी ज्यादा सता रही है।

—पैसों का अभाव आपको नहीं रहेगा। वह सब आप मुझपर छोड़ दीजिए। फिलहाल आप ये दो सौ रुपये रखिये। किसी और दिन आकर बतला जाऊंगा कि क्या-क्या करना पड़ेगा। नकद दो सौ रुपये पाकर निशिकान्त की आंखें चमक उठीं।

—आप बिल्कुल कुछ मत सोचिए। इन पैसों की रसीद भी मुझे नहीं चाहिए। रसीद लेकर रुपये का कारोबार हम लोग नहीं करते। आप हमारे गांव के हैं, विश्वास-अविश्वास का प्रश्न आपके लिए उठता ही नहीं। अब मैं चलता हूं, रात हो गई है। फिर जाते-जाते मुड़कर बोला—किसीको कुछ बताइएगा नहीं। दुनिया में सब तरह के लोग हैं। सभी आपकी और हमारी तरह सज्जन नहीं होते। सब साले ठग और बेईमान हैं। कब कौन काम में अड़चन डाल दे, क्या पता?

निशिकान्त दरवाजे तक उन्हें छोड़ने आया था। बोला—नहीं, नहीं, मैं किसीको भी नहीं बताऊंगा।

वह आदमी चला गया।

निशिकान्त सोचने लगा, 'यह भगवान की ही महिमा है, नहीं तो, न जान, न पहचान, फिर यह आदमी उसीके घर आकर नकद पैसा क्यों दे गया? लेकिन काम दरअसल में क्या था, यह निशिकान्त की समझ में तब भी नहीं आया। ऐसा कौन-सा काम है जिसके जरिये एक-दो साल ही में

कलकत्ता में एक-दो मकान बनाए जा सकते हैं···यह निशिकान्त की समझ के वाहर की चीज़ थी।

खैर, ज्यादा दिन प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दो दिनों के वाद ही वह सज्जन फिर आए और पुछा—निशिकान्तजी कहां हैं?

सरयू घर पर ही थी। वोली—आइए। फिर उसे अपनी झोंपड़ी में आदरपूर्वक वैठाया, चाय के लिए भी पूछा।

वह भी वड़े विनयी निकले। वोले—हां वेटी। तुम जव कह रही हो तव चाय के लिए ना कैसे कर सकता हूं। चाय पीने के वाद पूछा—मैं उस दिन जो कुछ कह गया था, उसके वारे में निशिकान्त वावू ने किसीसे कुछ कहा तो नहीं?

सरयू वोली—यह सव कह भी किससे सकते हैं?

—निशिकान्त वावू गए कहां हैं?

—मुझे कहकर नहीं गए हैं।

—कव लौटेंगे?

—कोई ठीक नहीं। हो सकता है अभी आ जाएं, नहीं तो देर भी लग सकती है। आपको जो कुछ कहना हो मुझे कह दीजिए, मैं उन्हें वता दूंगी।

—तो फिर वेटी, तुम्हींको वताता हूं। मेरा नाम सुदर्शन है। सुदर्शन पोद्दार। वारिसाल से तुम्हीं लोगों की तरह निराश्रित होकर आया था। पर जिस दिन से यह कारोवार शुरू किया, तव से कोई दुख नहीं रहा। मजे में रहता हूं। तुम लोगों का हाल देखकर मिलने की इच्छा हुई, सो उस दिन चला आया।

सरयू वोली—आपका कारोवार किस चीज का है, जो इतना मुनाफा है?

सुदर्शन वोला—कारोवार वैसे थोड़ा वेढंगा ही है। पर जितना वेढंगा कारोवार होगा, मुनाफा भी उतना ही अधिक होगा। कारोवार की तो यही रीत है। तुम तो वेटी, सव कुछ समझती हीं होगी। पर मैं सोच रहा हूं, न जाने तुम इसे किस रूप में लोगी?

सरयू वोली—आप पहले वताइए तो सही, उसके वाद ही मैं कुछ सोच-कर कह सकती हूं।

सुदर्शन ने फिर विस्तृत रूप से सब कुछ कहा। कारोबार तस्करी का है। सरयू को बीच-बीच में नेपाल जाना पड़ेगा। नेपाल में गांजा और चरस सस्ता है। इसे वहां से सूटकेस में भरकर भारत लाना पड़ेगा। अगर चेक-पोस्ट पर धर-पकड़ हो तो मुंह बन्द करने के लिए पुलिस के हाथों में पांच सौ या हजार, कुछ देना होगा। इसमें बहुत फायदा है। इन सब कामों में पुलिस का अधिक सन्देह पुरुषों पर होता है, इसलिए यह काम सरयू को ही करना पड़ेगा।

निशिकान्त को बात पसन्द नहीं आई। पर सुदर्शन की एक ही रट थी कि पुलिस की निगाह औरतों पर कम पड़ती है।

—पर इतना गांजा भारत में किस काम आएगा?

सुदर्शन बोला—बेचूगा। कलकत्ता के आस-पास जितने भी ये नये आश्रम आप देख रहे हैं, सब गांजे और चरस की बिक्री के अड्डे हैं। इसके लिए हमें सरकार से लाइसेन्स नहीं लेना पड़ता और टैक्स भी नहीं भरना पड़ता। पक्के मुनाफे का कारोबार है, आप चिन्ता मत कीजिए। सरयू जैसे ही हावड़ा स्टेशन पर पहुंचेगी, हमारा आदमी वहां रहेगा। वह माल सहित आपके घर पहुंचा देगा।

निशिकान्त सुनकर थोड़ा घबरा गया। बोला—इसमें तो विपत्ति की आशंका रहती है। इस तरह से किसी दिन सरयू जेल भी जा सकती है।

सुदर्शन ठहाका मारकर हंस पड़ा। बोला—आपने तो साहब हंसा दिया। आज तक कभी कोई तस्कर पकड़ाया है कि जेल जाएगा? अगर इस तरह से सब जेल ही जाने लगे तो फिर पुलिस को पैसा कहां से मिलेगा? पुलिस भी तो आदमी ही है! उनके भी पत्नियां हैं, बाल-बच्चे हैं। दाल-रोटी-चावल, भाजी-तरकारी, कपड़े-लत्तों की उन्हें भी जरूरत पड़ती है। सूखी तनख्वाह से उनका गुजारा कैसे हो सकता है, कहिए?

निशिकान्त को सुदर्शन की बात उचित लगी। इस कालोनी में ही जब वे लोग आए थे, तब लोगों ने कितना डराया था, पर आज तक कौन-किसको हटा सका है। रिस्क नहीं लूगा तो फायदा भी कैसे होगा? सोचकर निशिकान्त ने पूछा—हर बार सरयू को कितना मिलेगा?

सुदर्शन बोला—पांच सौ रुपये। ट्रेन का किराया अलग से खर्च

लेस की घूस—यह सब हम लोगों का खर्च है।

पांच सौ रुपये ? निशिकान्त थोड़ा निश्चिन्त हुआ। फिर पूछा—हीने में कितनी बार सरयू को नेपाल जाना पड़ेगा ?

सुदर्शन बोला—तीन बार जा सकेगी तो तीन बार। दस बार जा सकती है तो दस बार। जितनी बार माल लाएगी, उतनी ही बार उसे पांच सौ रुपये मिलेंगे।

निशिकान्त ने फिर पूछा—नेपाल में सरयू गांजा कहां खरीदने जाएगी ? ज़िन्दगी में वह कभी नेपाल गई भी नहीं है। वहां किसीको जानती भी नहीं।

सुदर्शन बोला—आप इन सब बातों की ज़रा भी चिन्ता मत कीजिए। वहां भी हमारे आदमी हैं। वे ही सारी व्यवस्था करेंगे। आपकी पत्नी का काम वहां से केवल माल लाना है। बाकी झमेले से हम निबटेंगे।

इसके बाद हां भरने में कोई हर्ज नहीं दिखा। सरयू दूसरे ही दिन काम पर लग गई। सुदर्शन कुछ रुपये एडवांस भी दे गया था। उसीसे सरयू के लिए नई साड़ी, ब्लाउज़, पेटीकोट आदि खरीदे गए। और फिर एक दिन भगवान को स्मरण कर सरयू नेपाल रवाना हो गई। पांच दिन बाद वह सही-सलामत लौट भी आई। रास्ते में कोई दुर्घटना नहीं हुई। किसी-को पता भी नहीं चला कि सूटकेस में सरयू क्या भरकर ले आई। उसी दिन सुदर्शन नकद पांच सौ रुपये घर आकर दे गया। इसी तरह कई बार सरयू के नेपाल आने-जाने के बाद निशिकान्त ने टालीगंज में ढाई सौ रुपये का फ्लैट ले लिया। इसी समय से हाथ में ढेर सारा पैसा भी आने लगा। निशिकान्त भी आराम की ज़िन्दगी बिताने लगा। सरयू ही खटती थी। निशिकान्त पैर-पर-पैर धरे मौज के दिन गुज़ारने लगा। टालीगंज में आदि गंगा के किनारे का वह आश्रम भी उन्हीं दिनों बना था। एक नये महात्मा का जुगाड़ किया गया था। धीरे-धीरे भक्तगण भी जुटने लगे। सरयू पास-पड़ोस की महिलाओं को वहां एकत्र कर लाती, इस तरह भजन-कीर्तन होता, प्रसाद आदि बांटा जाता। इस तरह से एक दिन आश्रम पूरी तरह जम गया।

बीच-बीच में सरयू श्याम बाज़ार में बहन के घर जाने का नाम लेकर

नेपाल जाती और खूब पैसा कमाती। पर जिस तरह पैसों की उपयोगिता है, उसी तरह उसका एक दूसरा पहलू भी है—वह है अनर्थ। वही अनर्थ अब सरयू के जीवन में भी घटा। निशिकान्त ने शराब पीना शुरू कर दिया। शराब पीने से वह तन्दुरुस्ती महसूस करने लगा।

जो निशिकान्त कभी एक पैसे के लिए तरसता था वह रातोंरात धनी बन गया। लेकिन एक दिन अचानक ही पुलिस ने घर पर छापा मारा। किसीने या तो पुलिस को खबर की होगी कि यहां लुके-छिपे गांजे की तस्करी की जाती है या फिर घूस लेने वाले पुलिस का तबादला हो गया था। खैर, सरयू और निशिकान्त पिछले दरवाजे से भाग निकलने में सफल हो गए। पुलिस ने मकान-मालिक को पकड़ा। बेचारा मकान-मालिक जितना जानता था, बता दिया। उसी रात निशिकान्त ने टालीगंज का मकान छोड़कर मल्लिक साहब के यहां सहारा लिया।

८

निशिकान्त ने बताया—उसके बाद से सर, फिर वही हालत। जो थोड़ा-बहुत संचित पैसा था, उसीमें सरयू किसी तरह गुजारा करने लगी। लेकिन आखिर वह कब तक चलता? फिर सोने के कुछ गहने थे, उन्हें भी बेचना पड़ा।

लेकिन वह सुदर्शन बाबू कहां गए? मैंने पूछा।

निशिकान्त बोला—बड़ा विचित्र आदमी था वह। उसीने इस कारोबार में हम लोगों को फंसाया और खुद लापता हो गया। उसका आज तक पता नहीं चला।

—सुदर्शन पोद्दार तो एक दलाल होगा। तुमने उसका जो महाजन था, उसका पता क्यों नहीं लगाया?

—लगाया तो था सर! पर न तो उस महाजन का नाम मुझे मालूम था, और न ही कभी उसे देखा था, उसे कैसे पकड़ता। आते-जाते उस दिन देखा कि माणिकतला में गंगा के किनारे फिर एक महात्मा का

या आश्रम बना है। सोचा सरयू को छोड़कर सुदर्शन ने किसी और को कड़ा होगा। लेकिन मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली कि ऐसे कारोबार में फिर नहीं ;सूंगा। रुपया ज़रूर मिलता है, पर चैन नहीं। सरयू जब नेपाल जाती, मुझे रात को नींद नहीं आती। भूख नहीं लगती। हमेशा डर बना रहता के कहीं पुलिस ने सरयू को पकड़ न लिया हो। और जितना डर लगता उतनी ही शराब पीता। उसी समय से तो मैंने शराब पीनी शुरू की। नहीं तो साहब, पहले मैंने क्या कभी शराब चखी भी थी? इतना कहकर निशिकान्त उठ खड़ा हुआ। बोला—अब तो आपने मेरे दुख की कहानी सुन ली है। अब तो रुपया दीजिए।

मैंने कहा—लेकिन तुम्हारी पत्नी सरयू तुम्हें अब छोड़ क्यों गई? तुम्हारे दुख के दिनों में तुमसे वह दूर क्यों है? ज़रूर तुम उसके ज़रिये फिर रुपया कमाना चाहते हो, और उन रुपयों से शराब पीने की उम्मीद करते हो।

निशिकान्त को गुस्सा आ गया—आपको यह सब सरयू ने कहा है न? ऐसी हरामज़ादी औरत है। उसके लिए मैंने क्या नहीं किया! अपनी ज़िन्दगी खतरे में डालकर उसे बचाया, शादी करके उसे इज्ज़त दी और आज वह यह कहती फिर रही है, इतनी नमकहराम है। उसके बाद बोला—ठीक है। आप रुपये दें, चाहे नहीं, यह और बात है। लेकिन अगर ऊपर कोई भगवान है, तो इसका विचार वही करेगा कि सरयू ठीक है या मैं। लेकिन सर, मैं आपको इतना बता दूं कि संसार में रुपया एक बड़ी तुच्छ चीज़ है! रुपये से बहुत बड़ा है ईमान! अगर मैं ईमानदार आदमी हूं तो मेरा प्राप्य मुझे अवश्य मिलेगा। इतना याद रखिएगा।

इतना कहकर निशिकान्त दरवाज़े तक चला गया था। अचानक दीवार पर टंगे मल्लिक साहब के छाते को देखकर चौंक गया। जल्दी में छुपते समय मल्लिक साहब उसे उठाना भूल गए थे। निशिकान्त मल्लिक साहब का छाता पहचान गया। पूछा—यह क्या? यह तो मल्लिकजी का छाता लग रहा है। यह यहां कैसे आया? मल्लिकजी क्या आपके यहां आए थे?

मैं कुछ कहूं इसके पहले ही निशिकान्त फिर बोल पड़ा—मल्लिक

साहब कहीं छुपे हुए हैं क्या ?

मैंने कहा—तुम घर जा रहे थे, जाओ। किसीका छाता है या नहीं, इसमें तुम अपना सर क्यों खपाते हो ? मुझे लिखना है। मेरा समय बर्बाद मत करो।

निशिकान्त बोला—अरे साहब, छोड़िए भी यह लिखने-विखने की बात। क्या लिखेंगे ? पूजा या दीपावली विशेषांक के लिए ही तो लिखेंगे। यह भी कोई रचना है ? सब जंजाल है। रुपये कमाने का धन्धा है। लेकिन मल्लिक का छाता यहां आया कैसे ? यह बताइए ?

मैंने ऊंची आवाज में कहा—अगर खैरियत चाहते हो तो निकल जाओ, यहां से।

मुझे गुस्से में आते देख निशिकान्त घबरा गया। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि मैं इस कदर गुस्सा कर सकता हूं। लेकिन एक क्षण में ही उसने अपने को सम्भाल लिया। बोला—आज आप मेरे साथ इस तरह से बातें कर रहे हैं, जरूर आपके यहां मल्लिक साहब आए होंगे और मेरे विरुद्ध आपके कान भरे होंगे। नहीं तो पहले तो आपने मेरे साथ कभी इस तरह से बात नहीं की थी।

मैंने कहा—तुम्हारे साथ अभी और बातें करने के लिए मेरे पास वक्त नहीं है निशिकान्त। मैं अच्छी तरह से तुमसे कह रहा हूं कि तुम इस समय मेरे घर से चले जाओ। पर निशिकान्त अड़ा रहा। बोला—पहले आपको बताना पड़ेगा कि मल्लिकजी का छाता आपके यहां आया कैसे ? यह मेरा परिचित छाता है, सर ! जब तक आप मेरी बात का जवाब नहीं देंगे, मैं हिलूंगा नहीं।

मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। बोला—तुम्हारी इतनी हिम्मत ? मेरे घर पर मुझे ही धमकी दे रहे हो ?

इसी बीच कमरे के अन्दर से मल्लिक साहब निकल आए। मल्लिक साहब को देखते ही निशिकान्त बोला—जो सोचा था, वही निकला। इसी चुगलखोर मल्लिक ने आपसे मेरी चुगली खाई है। वही तो मैं सोच रहा था कि इतने बड़े लेखक होकर आप इतनी ही बात के खिलाफ कैसे हो गए ? यह सब इसी बदमाश की करतूत है।

मल्लिक साहब भी चुप रहने वाले आदमी नहीं थे। बोले—क्यों नहीं कुछ कहूंगा। एक भले मानस साहित्यिक को तुम चकमा दोगे और मैं टुकुर-टुकुर देखता रहूंगा ? यह तुम्हें रुपया नहीं देंगे। किराये के नाम पर रुपया लेकर तुम शराब पीओ और मैं चुपचाप रहूं ? उसके बाद मेरी तरफ देखकर बोले—निशिकान्त को पैसा न देकर आपने अच्छा ही किया है। मैं अन्दर बैठा सब सुन रहा था। यह एक नम्बर का शराबी है। इसे आप कभी पैसा नहीं दीजिएगा। इसकी अपनी ही जुबान से तो आपने सुना कि इसने पत्नी के माध्यम से किस तरह पैसा कमाया है। अब जब इसकी पत्नी इसे पैसा नहीं देती तब इसने लोगों को ठगने का धन्धा शुरू कर दिया है। पत्नी के पैसों के बल पर जब नवाबी करता था तब याद नहीं था कि कभी दुख के दिन भी आ सकते हैं ? उस समय सारा पैसा न उड़ाकर अगर कुछ संचय करता तो क्या आज दूसरे के यहां इसकी पत्नी को नौकरानी का काम करना पड़ता ? आप ही बताइए, सर ! वह भी तो मनुष्य है, उसका भी हृदय है। कोई मशीन तो है नहीं कि जिस तरह चाभी भर दी जाए, उसी तरह चलती रहेगी। उसकी भी इच्छाएं हैं, उसके भी शौक हैं। औरत होकर जन्मी है। फिर मां बनने की इच्छा नहीं होती ? पर इस आदमी ने उसकी किसी भी इच्छा की पूर्ति की है ! अपनी छाती पर हाथ रखकर तो कहे कि इसने उसके साथ न्याय किया है। उसके गहने तक बेचकर इसने शराब पी है। इसकी सारी कीर्त्ति तो मैंने आपके सामने बखान ही नहीं की है। आप सुनेंगे तो हैरान रह जाएंगे। शायद एक अच्छा-सा उपन्यास भी लिख डालें।

मैंने कहा—देखिए मल्लिकजी, यह सब सुनने की मुझे आवश्यकता नहीं। उपन्यास के प्लाट की कोई कमी भी नहीं है। अच्छा होगा कि आप अभी तशरीफ ले जाइए। आप निश्चिन्त रहें। मैं निशिकान्त को रुपये नहीं दूंगा। और फिर निशिकान्त को मैंने कहा—तुम्हें भी मुझे यह कहना है कि आइन्दा से तुम कभी मेरे घर पर मत आना।

निशिकान्त सम्भवतः इसके भी जवाब में कुछ कहना चाहता था, पर मैंने उसे बोलने का मौका ही नहीं दिया। दोनों को कमरे से बाहर करके कानाई को दरवाजा बन्द करने के लिए मैंने कह दिया।

मैं निर्विवादी निस्संग आदमी। ऐसे फालतू लोगों से मेरा क्या मतलब ? कौन अपनी पत्नी को खटवाकर उपार्जन करता है। कौन उस पैसे से शराब पीता है, किसे मकान का किराया नहीं मिलता—इन सबके लिए मैं क्यों सोचूं ? मेरे पास इतना वक्त ही कहां ?

६

इसके बाद कभी किसी मौके पर निशिकान्त वगैरह से मेरी मुलाकात नहीं हुई। न तो मैं ही उनके पास गया और न ही वे लोग कभी मेरे यहां आए। इसके अलावा कलकत्ता शहर में इस तरह के कितने निशिकान्त और कितनी सरयू और कितने ही मल्लिक साहब मिलेंगे, अगर इन सबके बारे में सोचा जाए तो जीवन दूभर हो उठेगा। अपने रोज के कामों को भूलना पड़ेगा।

खैर, इस घटना के कई महीनों बाद एक सज्जन मेरे पास एक पुस्तक लेकर आए। मेरे किसी एक उपन्यास पर वह एक फिल्म बनाना चाहते थे।

फिल्मों की बात उठते ही मैं थोड़ा सतर्क हो जाता हूं, क्योंकि फिल्मों में साधारणतया साहित्य को विकृत करके उपेक्षित किया जाता है। किसी दुखद उपन्यास के अन्त को भी तोड़-मरोड़कर उसपर बनी फिल्म को सुखद अन्त वाला बना दिया जाता है। उनका कहना है कि जनता ट्रेजेडी फिल्मों को पसन्द नहीं करती। जनता तो बस दो और दो मिलाकर चार का योगफल चाहती है। जनता के सम्बन्ध में विचित्र धारणा होती है उनकी। लेकिन वास्तव में क्या जीवन दो और दो का योगफल ही है ? अगर ऐसा ही होता तो फिर किसी उपन्यास को लेकर हम लोगों को चिन्ता ही नहीं रहती।

साहित्य-सेवा में जीवन के इतने दिन बिताकर आज फिल्मों के लोगों से जब हितोपदेश सुनता हूं तब अपने को धिक्कारने का मन करता है। सिनेमा के दर्शकों की बात मैं नहीं करना चाहता। उन्हें शायद मा[illegible] नहीं

कि हम अनपढ़ लोगों के लिए कलम नहीं पकड़ते, और न ही पढ़े-लिखे लोगों के लिए। हम तो बस थोड़े-बहुत रसिक लोगों के लिए लिखते हैं। अगर वे मेरी किताब खरीदते हैं तो बहुत अच्छा। न भी खरीदें तो कोई बुरा नहीं, क्योंकि आज का समय विचारकाल तो है नहीं। लिखने के समय केवल दो ही लोगों का ख्याल रहता है—एक तो स्वयं का और दूसरा चिरकाल के उस अदृश्य रसिक पाठक का।

फिल्म वालों को तो किसी बात का सिरदर्द नहीं। उनका उद्देश्य बस आज के दर्शकों को खुश करना होता है—अर्थात् नकद-नारायण की पूजा। इसके अलावा भी साहित्य और सिनेमा के बीच एक बड़ा विरोध है, एक सूक्ष्म विरोध। वह यह कि साहित्य की गति जितनी धीमी होगी वह उतनी ही स्वादिष्ट होगी, पर सिनेमा को द्रुतगति का होना पड़ता है। इन बातों को लेकर गम्भीर आलोचना हो सकती है, लेकिन जो फिल्म बनाने आए हैं, उनसे यह सब कहना व्यर्थ है। उन्हें केवल अर्थ चाहिए और हमें अर्थ के साथ थोड़ा परमार्थ भी। लेकिन इन दोनों का समन्वय क्या किसी भी युग में सम्भव है?

खैर! जो व्यक्ति सिनेमा के उद्देश्य से मेरे पास आए थे, वे काफी पैसे वाले थे। पैसे की छाप उनके व्यक्तित्व में, उनकी पोशाक में और उनकी गाड़ी पर स्पष्ट थी।

उन्होंने कहा—हमें आपकी कहानी पसन्द आई है। मैं चाहता हूं कि इसपर कोई फिल्म बने, ताकि सब इसे देख सकें।

उसके बाद भी और बहुत-सी बातें हुई। आलोचना हुई। मोल-भाव हुआ। फिर जब सारी बातें पक्की हो गई तब उन्होंने कहा—मैं आपको अपने पानिहाटी के बगीचे में निमन्त्रण देता हूं। वहीं पर निर्देशक के साथ चित्रनाट्य के सम्बन्ध में बातचीत होगी। आप कब आ सकेंगे, कहिए।

मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। कहानी जब मेरी लिखी हुई है, तब मेरे साथ आलोचना करना भी स्वाभाविक था। मैंने उन्हें एक तारीख दे दी।

उस तारीख को निश्चित समय पर वे लोग हमें अपने पानिहाटी के बगीचे वाली कोठी पर ले गए। बगीचा बहुत बड़ा था। तालाब भी था। बगीचे के बिल्कुल पास ही उनका प्लाईवुड का कारखाना था।

खाने-पीने का आयोजन भी जबर्दस्त था।

मैंने यह ख्याल किया है कि फिल्म शुरू करने के पहले कहानी के सम्बन्ध में जो बातचीत होती है, वह करीब एक-सी ही होती है। कहानी को ऐसा मोड़ दिया जाए ताकि निर्माता की तिजोरी भरी जा सके। सारी आलोचना का रुख उसी तरफ होता है। फिल्म किस तरह अच्छी बन सकती है, इसपर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। पैसे के सामने कला हमेशा उपेक्षित ही रह जाती है।

आलोचना के बाद भोजन समाप्त होते-होते ढाई बज गए। कथा-प्रसंग में मैंने कहा—मेरी यह कहानी तो नायिका-प्रधान है। नायिका के चरित्र की भूमिका कौन निभा रही है?

निर्माता ने कहा—एक नई कलाकार है। इससे पहले उसने किसी फिल्म में काम नहीं किया है।

मैंने कहा—कोई नई कलाकार इतने जटिल चरित्र की भूमिका निभा सकेगी?

निर्देशक ने कहा—यह आप मुझपर छोड़ दीजिए। मैं उससे करा लूंगा।

हर फिल्म का निर्देशक यही बात कहता है। निर्देशक को काम चाहिए। फिल्म भले जाए भाड़ में। उसे तो बस अच्छी रकम मिलनी चाहिए। फिर क्या? खुशी ही खुशी।

निर्माता ने कहा—वह अभिनेत्री यहीं है। आप देखना चाहते हैं?

—यहीं पर है? मैंने पूछा।

—हां, पास वाली कोठी में। ठीक इसके बगल में ही मेरा एक और भी मकान है। आज का खाना उसीने तो बनाया है। उसे बुला भेजूं?

—बुलवाइए।

नायिका को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया। और फिर थोड़ी देर बाद जो मेरे सामने आकर खड़ी हुई उसे देखकर मैं हतप्रभ रह गया। हैरान वह स्वयं भी हुई। दोनों एक-दूसरे को निर्वाक् थोड़ी देर तक देखते रहे। सरयू को मैं यहां ऐसी अवस्था में देखूंगा—यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

कि हम अनपढ़ लोगों के लिए कलम नहीं पकड़ते, और न ही पढ़े-लिखे लोगों के लिए। हम तो बस थोड़े-बहुत रसिक लोगों के लिए लिखते हैं। अगर वे मेरी किताब खरीदते हैं तो बहुत अच्छा। न भी खरीदें तो कोई बुरा नहीं, क्योंकि आज का समय विचारकाल तो है नहीं। लिखने के समय केवल दो ही लोगों का ख्याल रहता है—एक तो स्वयं का और दूसरा चिरकाल के उस अदृश्य रसिक पाठक का।

फिल्म वालों को तो किसी बात का सिरदर्द नहीं। उनका उद्देश्य बस आज के दर्शकों को खुश करना होता है—अर्थात् नकद-नारायण की पूजा। इसके अलावा भी साहित्य और सिनेमा के बीच एक बड़ा विरोध है, एक सूक्ष्म विरोध। वह यह कि साहित्य की गति जितनी धीमी होगी वह उतनी ही स्वादिष्ट होगी, पर सिनेमा को द्रुतगति का होना पड़ता है। इन बातों को लेकर गम्भीर आलोचना हो सकती है, लेकिन जो फिल्म बनाने आए हैं, उनसे यह सब कहना व्यर्थ है। उन्हें केवल अर्थ चाहिए और हमें अर्थ के साथ थोड़ा परमार्थ भी। लेकिन इन दोनों का समन्वय क्या किसी भी युग में सम्भव है?

खैर! जो व्यक्ति सिनेमा के उद्देश्य से मेरे पास आए थे, वे काफी पैसे वाले थे। पैसे की छाप उनके व्यक्तित्व में, उनकी पोशाक में और उनकी गाड़ी पर स्पष्ट थी।

उन्होंने कहा—हमें आपकी कहानी पसन्द आई है। मैं चाहता हूं कि इसपर कोई फिल्म बने, ताकि सब इसे देख सकें।

उसके बाद भी और बहुत-सी बातें हुई। आलोचना हुई। मोल-भाव हुआ। फिर जब सारी बातें पक्की हो गईं तब उन्होंने कहा—मैं आपको अपने पानिहाटी के बगीचे में निमन्त्रण देता हूं। वहीं पर निर्देशक के साथ चित्रनाट्य के सम्बन्ध में बातचीत होगी। आप कब आ सकेंगे, कहिए।

मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। कहानी जब मेरी लिखी हुई है, तब मेरे साथ आलोचना करना भी स्वाभाविक था। मैंने उन्हें एक तारीख दे दी।

उस तारीख को निश्चित समय पर वे लोग हमें अपने पानिहाटी के बगीचे वाली कोठी पर ले गए। बगीचा बहुत बड़ा था। तालाब भी था। बगीचे के बिल्कुल पास ही उनका प्लाईवुड का कारखाना था।

खाने-पीने का आयोजन भी जबर्दस्त था।

मैंने यह ख्याल किया है कि फिल्म शुरू करने के पहले कहानी के सम्बन्ध में जो बातचीत होती है, वह करीब एक-सी ही होती है। कहानी को ऐसा मोड़ दिया जाए ताकि निर्माता की तिजोरी भरी जा सके। सारी आलोचना का रुख उसी तरफ होता है। फिल्म किस तरह अच्छी बन सकती है, इसपर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। पैसे के सामने कला हमेशा उपेक्षित ही रह जाती है।

आलोचना के बाद भोजन समाप्त होते-होते ढाई बज गए। कथा-प्रसंग में मैंने कहा—मेरी यह कहानी तो नायिका-प्रधान है। नायिका के चरित्र की भूमिका कौन निभा रही है?

निर्माता ने कहा—एक नई कलाकार है। इससे पहले उसने किसी फिल्म में काम नहीं किया है।

मैंने कहा—कोई नई कलाकार इतने जटिल चरित्र की भूमिका निभा सकेगी?

निर्देशक ने कहा—यह आप मुझपर छोड़ दीजिए। मैं उससे करा लूंगा।

हर फिल्म का निर्देशक यही बात कहता है। निर्देशक को काम चाहिए। फिल्म भले जाए भाड़ में। उसे तो बस अच्छी रकम मिलनी चाहिए। फिर क्या? खुशी ही खुशी।

निर्माता ने कहा—वह अभिनेत्री यहीं है। आप देखना चाहते हैं?

—यहीं पर है? मैंने पूछा।

—हां, पास वाली कोठी में। ठीक इसके बगल में ही मेरा एक और भी मकान है। आज का खाना उसीने तो बनाया है। उसे बुला भेजूं?

—बुलवाइए।

नायिका को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया। और फिर थोड़ी देर बाद जो मेरे सामने आकर खड़ी हुई उसे देखकर मैं हतप्रभ रह गया। हैरान वह स्वयं भी हुई। दोनों एक-दूसरे को निर्वाक् थोड़ी देर तक देखते रहे। सरयू को मैं यहां ऐसी अवस्था में देखूंगा—यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

निर्माता ने पूछा—बोलिए—कैसी है ?

उनकी आवाज़ से मेरे होश लौट आए। बोला—अच्छी है।

—इस कलाकार से काम चलेगा ? आपकी क्या राय है ?

—चलेगा।

इसके बाद और कोई बातचीत नहीं हुई। सरयू से मैं कई प्रश्न करना चाहता था, और मुझे लगा कि वह भी मुझे कुछ कहना चाहती थी। पर मौका नहीं मिल रहा था।

निर्माता ने कहा—अब तुम जा सकती हो, सरयू !

सरयू जिस तरह आई थी, उसी तरह निःशब्द वापस चली गई।

थोड़ी देर तक मैं विमूढ़ बैठा रहा। सोचता रहा, यह क्या हुआ ? सरयू यहां कैसे पहुंची ? सरयू का जीवन किस विचित्र दिशा की ओर मोड़ ले रहा है ? पाकिस्तान से लौटते समय रास्ते की वह विपत्ति, निशिकान्त के साथ उसकी भेंट, फिर विवाह, नेपाल से गांजे की तस्करी, टालीगंज की गंगा के किनारे उस साधु के अखाड़े पर प्रसाद-वितरण से लेकर कहां एक विधुर धनी के बच्चों की देखभाल करने वाली आया की नौकरी। और फिर यह···आखिर उसका जीवन किधर मुड़ रहा है ? खैर, सरयू मेरी कौन होती है कि मैं उसके लिए इतना सोचूं ?

बाकी लोगों के वहां बगीचे में और देर तक रहने का प्रोग्राम था, लेकिन मेरी विदाई उन्होंने पहले ही कर दी। मैंने यही अन्दाज़ लगाया कि मुझे भेजने के बाद इन लोगों में व्हिस्की का प्रोग्राम चलेगा। निर्माता ने मेरी वापसी के लिए प्रबन्ध कर दिया था। सबसे विदा लेकर मैं अकेला ही फाटक की तरफ बढ़ा। पर पास ही अन्धेरे में किसी पेड़ के नीचे से किसीने पुकारा—सुनिए !

मैं समझ गया। वह सरयू थी।

मैंने चारों तरफ नज़र दौड़ाई, पर कहीं कोई नज़र नहीं आया। सरयू सम्भवतः एकान्त में ही मुझसे कुछ कहना चाहती थी। केवल मौके की प्रतीक्षा में थी।

फिर खुद मेरे नज़दीक आकर बोली—यह आपने क्या किया ?

मैं हैरान हो रहा था।

सरयू की बात समझ में नहीं आ रही थी। पूछा—मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

सरयू बोली—आपके जिस उपन्यास पर ये लोग फिल्म बना रहे हैं, उसे मैंने पढ़ा है। लेकिन नायिका से आपने अन्त में वेश्यावृत्ति करवाई है। मैं क्या वास्तव में ऐसी हूं?

इसका जवाब मेरे पास था, पर जुबान पर नहीं ला सका।

मैं कुछ बोलूं, उससे पहले ही सरयू बोली—इन लोगों को भी नहीं मालूम कि आपने मुझे ही लेकर यह कहानी लिखी है। लेकिन किसीको मालूम हो या नहीं, मैं तो जानती ही हूं। और अपने को मैं आपसे अधिक पहचानती हूं। आपकी कहानी की नायिका की तरह मैं इतनी बेवकूफ नहीं। भले-बुरे का अन्दाज मुझे भी है। मेरे बारे में आपको किसने इतनी बातें बताईं? खैर! जिसने भी बताई हों उसने आपको असली बात नहीं बताई।

मैंने कहा—कहानी कहानी होती है। तुम क्यों परेशान होती हो?

सरयू बोली—आप मुझपर झूठा कलंक थोपेंगे और मैं परेशान न होऊं? कैसी बात करते हैं आप?

—लेकिन सरयू, अपनी कहानी में मैंने कहीं भी तुम्हारा नाम तो दिया नहीं है।

सरयू बोली—अगर आप नाम दे भी देते तो भी मैं आपका क्या बिगाड़ लेती? मैं आपके नाम मानहानि का मुकदमा शायद तो कर नहीं सकती। जब आपने मेरी सारी बात लिखी ही है तो मेरा नाम देने के लिए आपको मना ही किसने किया था?

मैंने कहा—यही कहने के लिए तुम इतनी देर तक रुककर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। अगर अभी तुम्हें कोई यहां देख ले तो?

—इस समय यहां कौन देखेगा? किसके पास इतनी फुर्सत है। अब तक तो व्हिस्की में सब धुत हो गए होंगे। नशा चढ़ चुका होगा?

मैंने कहा—निशिकान्त शराब पीता था, इसलिए तुमने उसे [illegible] था। अब भाग्य की विडम्बना देखो कि ऐसे शराबियों के हाथों में तुम्हें

सरयू बोली—निशिकान्त शराब पीता था, इसलिए मैंने [illegible] आपको किसने कहा? देखिए, आप अपने को बहुत [illegible]

असल में आपने अब तक मनुष्य-चरित्र को समझा ही नहीं है। आप न तो निशिकान्त को समझ सके और न ही मुझे। फिर भी आप हम दोनों को लेकर कहानी लिख गए। और अब उस कहानी पर फिल्म भी बन रही है। लेकिन मैं आपसे पूछती हूं आपने यह कहानी लिखी क्यों ? आपने क्यों इस तरह निशिकान्त का अपमान किया ?

मैंने कहा—निशिकान्त जैसा है, मैंने उसे वैसा ही आंका है।

सरयू बोली—नहीं। निशिकान्त वैसा दुश्चरित्र और लम्पट नहीं है। मनुष्य के बाहर का रूप देखकर उसके चरित्र के बारे में निर्णय कर लेना अनुचित है।

मैंने कहा—तुम मल्लिक साहब को जानती हो ? मणिकतला में तुम्हारे फ्लैट के मकान मालिक ?

—वह लम्पट ?

मैंने कहा—तुम उसे लम्पट कह रही हो ? उससे तो तुम अक्सर भेंट करती रहती हो। उसीके हाथ तुम निशिकान्त के फ्लैट का किराया, चाय के पैसे, होटल में खाने के पैसे सब भेजती रहती हो।

—यह सब झूठ है।

तुम कहना क्या चाहती हो ? मल्लिक साहब ने मुझसे सब झूठ कहा है ? मैंने निशिकान्त को दो सौ रुपए देने के लिए अपने घर पर बुलाया था, पर तुम्हींने मल्लिक के मारफत मुझे निशिकान्त को पैसे देने के लिए मना करवाया था। इसके अलावा निशिकान्त ने स्वयं भी मुझे बताया कि तुम बर्बाद हो चुकी हो।

सरयू बोली—बर्बाद तो मैं बहुत पहले ही हो चुकी थी। वह तो आप उसी दिन जान गए थे जिस दिन मोकामा घाट स्टेशन पर गांजे से भरा सूटकेस आपको थमाकर मैं गायब हो गई थी। फिर उसके बाद पुलिस से भागकर मैंने आपके यहां शरण ली, फिर वहां पिछवाड़े से भाग निकली। उस दिन भी तो आप समझ ही चुके थे कि मैं कितनी बर्बाद हो चुकी हूं—आपने यह सारी बातें तो अपनी कहानी में लिखी ही हैं। निशिकान्त ने आपसे कुछ गलत नहीं कहा।

मैंने कहा—फिर तुम्हारी कहानी लिखकर मैंने कौन-सी गलती की ?

और कौन-सी बात झूठ कही है ?

सरयू बोली—निशिकान्त के साथ आपने अन्याय किया है। उसे आपने एक चरित्रहीन लम्पट के रूप में आका है। आपको उसे कहानी का खल-नायक नहीं बनाना चाहिए था। फिर थोड़ा रुककर बोली—अभाव में, गरीबी में, दुख में, परेशानी में आदमी जो कुछ करता है उसमें उसका मूल्यांकन नहीं किया जाता। यह उसके प्रति अन्याय है। क्या आप जानते हैं कि निशिकान्त एक महान् निःस्वार्थ सच्चा आदमी है।

मैंने कहा—क्या बक रही हो। एक शराबी को अच्छा कहते हुए तुम्हें अखरता नहीं ?

सरयू बोली—मेरी जबान पर कोई बात नहीं अखरती। मैं आज कितनी भी गिरी हुई क्यों न हूं, लेकिन अच्छे को अच्छा कहने का साहस मुझमें अब भी है और जरूरत पड़े तो दुनिया के सामने मैं ऊंची आवाज में चिल्लाकर कह सकती हूं।

मैंने कहा—आज इतनी बड़ी-बड़ी बातें सुना रही हो। पर वह बात बहुत पुरानी तो है नहीं, जब मेरे सामने टालीगंज के मकान से गाली-गलौज कर तुमने उसे निकाल दिया था।

सरयू बोली—इसी बल पर आप अपने को लेखक मानते हैं ? मनुष्य-चरित्र का इतना ही ज्ञान है ? इसी ज्ञान के आधार पर किताबें लिखकर लोगों से वाहवाही लूटते हैं ? मुंह की बात ही अगर सच्ची होती तो लोग तो···भगवान को भी गाली देते हैं। क्या भगवान के प्रति किसीके मन की बात गाली होती है ?

अचानक कुछ बातचीत की आवाज सुनाई पड़ी। निर्माता, निर्देशक और एक-दो और आदमी फाटक की तरफ आ रहे थे। सरयू उन लोगों को देखते ही अंधेरे में पेड़ के पीछे अदृश्य हो गई।

निर्माता ने मुझे देखा तो हैरान होकर पूछा—आप अभी तक यहीं पर हैं···आपके लिए तो मैंने गाड़ी का प्रबंध किया था ?

मैंने कहा—गाड़ी कहां है उसीका पता कर रहा था।

निर्माता ने कहा—आपको अभी तक गाड़ी ही नहीं मिली। ताज्जुब है। अच्छा अभी देखता हूं। इतना कहकर वह आगे बढ़ गए। फाटक से

थोड़ी दूर पर गाड़ी खड़ी थी । ड्राइवर वैठा-वैठा सो रहा था ।

—यह रही आपकी गाड़ी—निर्माता ने कहा ।

ड्राइवर को नींद से जगाया गया । उस वेचारे को वेकार में डांट पड़ गई । मेरी तकलीफ के लिए निर्माता ने मुझसे माफी भी मांगी । मुझे लगा—अलकोहल का डोज़ पेट में कुछ ज्यादा ही पड़ा था । इसी कारण गद्गद भाव से वातें कर रहे थे । मैं गाड़ी में वैठकर सीधा घर आ गया ।

खैर । फिल्म अन्त तक नहीं ही वनी । अक्सर फिल्मों के साथ जो होता रहता है—इसके साथ भी वही हुआ । ख्वामख्वाह वहुत-से रुपये शराव और औरत के पीछे वर्वाद हो गए । पर मुझे इससे जो कुछ हुआ, वह वड़ी विचित्र घटना थी । वही कहूंगा ।

फिल्म-विल्म की वात तो मैं भूल चुका था । जीवन रोज़ की तरह चल रहा था । अचानक एक दिन अखवार में एक खवर पढ़कर चौंक गया । समाचार यों था कि प्रभुदयाल सिंह नाम के एक व्यापारी का उसके पानिहाटी के वगीचे वाली कोठी में खून हो गया था । खून के अपराध में निशिकान्त हालदार नाम के एक आदमी को पकड़ा गया था । खून के कारण का कुछ पता नहीं चला । खोज जारी है ।

मुझे याद आया, प्रभुदयाल सिंह तो मेरी उस कहानी के फिल्म-निर्माता थे । निशिकान्त ने आखिर उसकी हत्या कर दी । मैं समझ गया कि इस खून का मूल कारण सरयू ही है । सरयू के कारण ही प्रभुदयाल पर निशिकान्त को आक्रोश रहा होगा । प्रभुदयाल का खून करके निशिकान्त ने वदला लिया होगा । कोई कुछ समझे या नहीं, मेरे समक्ष वात स्पष्ट थी ।

१०

पुलिस से मैंने पूछा—मुझे गवाह किसने वनाया ? किसने मेरा नाम वताया ?

पुलिस ने वताया—मुजरिम के वकील ने ।

मैं सोच में पड़ गया । ढूंढ़-ढूंढ़कर उस वकील के घर पहुंचा । वोला

मुझे क्यों इस मामले में फंसा रहे हैं ?

वकील ने कहा—मैं आपको क्यों फंसाऊंगा ? आपको तो श्रीमती सरयू हालदार ने फंसाया है। आप उसके मुकदमे के तीसरे गवाह हैं।

मैंने कहा—मैं तो इस मामले के बारे में कुछ भी नहीं जानता।

वकील ने कहा—आप निशिकान्त को जानते हैं, सरयू को भी जानते हैं। उन्हीके बारे में बताइएगा।

—लेकिन श्रीमती सरयू देवी किस पक्ष की गवाह हैं ?

—फरियादी पक्ष की। उसके सामने ही तो प्रभुदयाल सिंह की हत्या हुई थी।

यद्यपि मैं जानता था कि प्रभुदयाल सिंह कौन था, तथापि संदेह दूर करने के लिए पूछा—प्लाईवुड का कारखाना उन्हींका था ? प्लाईवुड के बक्से असम के चाय के बगीचों में भेजकर बहुत पैसा कमाता था—वह प्रभुदयाल सिंह।

जब पता लगा कि वह अद्वितीय व्यक्ति प्रभुदयाल सिंह ही है तब मेरा संदेह बिल्कुल ही जाता रहा। पूरी घटना को आद्योपान्त मन में सजाकर जिस निष्कर्ष पर पहुंचा, वही सच निकला।

निशिकान्त के लिए मुझे दुख हो रहा था। सरयू के लिए भी। पैसे के अभाव के कारण ही संसार और समाज में अपराध का जन्म होता है। अगर निशिकान्त को किसी बात का अभाव नहीं रहता, पाकिस्तान से भागना नहीं पड़ता, अगर पत्नी के साथ उसे जगह-जगह भटकना नहीं पड़ता, स्वस्थ जीवन मिलता, कोई स्वस्थ जीविका मिलती तो वह आज इस परिस्थिति में नहीं रहता। उसकी यह दशा नहीं होती। लेकिन उस समय तक मुझे नहीं मालूम था कि कचहरी में इससे भी बड़ा विस्मय मेरी प्रतीक्षा में है।

मैंने सोचा, सरयू से एक बार भेंट करनी चाहिए। एक बार दिमाग में आया, मल्लिक साहब के घर का ही पता करूं और उनसे पूछताछ कर पूरी घटना अच्छी तरह से जान लूं, समझ लूं। निशिकान्त क्या उन्हींके फ्लैट में अन्त तक रहता था ? सरयू और निशिकान्त के लिए मल्लिक साहब ने जो कुछ कहा था, वह सब क्या झूठ था ? मुझे पूरी जानकारी की जरूरत थी।

पानिहाटी के बगीचे में सरयू के साथ मेरी जो बातचीत हुई थी उससे तो यही लग रहा था कि मल्लिक खुद एक लम्पट आदमी है। तो फिर क्या निशिकान्त मूलतः निर्दोष था ? ज्यादा सोचने-विचारने का वक्त भी नहीं था। सोचा, जितना जानता हूं उतना ही कहूंगा। अगर निशिकान्त को फांसी लग भी जाए तो मेरी कोई हानि नहीं और यदि वह निर्दोष साबित कर दिया जाता है तब भी मुझे कोई फायदा नहीं। उसकी अच्छाई-बुराई के साथ दुनिया के और किसी की बुराई या भलाई जुड़ी नहीं है। मैं निरपेक्ष आदमी हूं। घटनाचक्र के फेर में इन लोगों से उसी तरह जड़ित हो गया जैसे हजारों और लोगों से कई बार जुड़ना पड़ा है। इसलिए मैं क्यों किसी पक्ष को उपालम्भ दूंगा। अतः जिस दिन कचहरी से बुलावा आया, मैं सीधा पहुंच गया।

११

मैं समय पर कचहरी पहुंच गया। कोर्ट-रूम खचाखच भरा था। लोग तरह-तरह की टीका-टिप्पणी कर रहे थे। कोई आसामी का पक्ष लेकर बोल रहा था तो कोई विपक्ष में। पक्ष-विपक्ष की बात अगर छोड़ दी जाए तो संसार के अधिकतर लोग स्वभाव से कुतूहली होते हैं और उसपर यदि किसी घटना में कलंक की गन्ध आ जाए तो बातचीत में भी रस आ जाता है। सभी उस लड़की को देखने के लिए आतुर थे जिसके कारण यह खून का मुकदमा चल रहा था। अर्थात् सरयू ही यहां की केन्द्र-बिन्दु बनी हुई थी।

एक-एक करके और सभी की गवाही हो गई। लेकिन उस दिन मुकदमा खत्म नहीं हुआ। कोर्ट का कानून अपने नियमों से चलता है। जिस दिन भी मैं जाता किसी न किसी कारण से मुकदमा उस दिन के लिए स्थगित कर दिया जाता। इस तरह कितने ही दिन बीत गए।

अन्त में एक दिन मेरा बुलावा आया। मैं गवाह नम्बर तीन था। सरकारी वकील ने जिरह से मुझे झकझोर दिया। अन्त तक मैं इतना ही

कह पाया, मैं आसामी को जानता हूं। उसके साथ कई बार मेरी मुलाकात भी हुई है। हर बार जो घटना घटी वह भी मैं बता गया।

उसके बाद ही वकील ने मुझसे सवाल किया—आपकी राय में क्या मुजरिम अपराधी है?

मैंने कहा—घटना के समय मैं वहां उपस्थित नहीं था, इसलिए मैं कैसे कह सकता हूं कि वह अपराधी है या नहीं? लेकिन इतना जरूर कह सकता हूं कि मुजरिम के लिए यह अपराध कोई असम्भव नहीं था।

मुझे मुक्ति मिल गई। लेकिन मुकदमे का फैसला जानने की मन में उत्कण्ठा थी।

मुकदमे का नतीजा सरयू की गवाही पर निर्भर था। दुर्घटना के समय सरयू घटनास्थल पर उपस्थित थी और उससे भी बड़ी बात थी कि वह आसामी की पत्नी थी।

इस कारण सभी के मन में कुतूहल था, उत्सुकता थी। सरयू कठघरे में खड़ी हुई। मैंने उसकी तरफ देखा। बहुत दिनों के बाद देख रहा था। लेकिन लगा इतनी बड़ी दुर्घटना के बाद भी उसके चेहरे में कोई परिवर्तन नहीं आया है। लेकिन उसने जो कुछ कहा, उसे सुनकर सबके साथ मैं भी चकित रह गया। गवाही देते समय वह एक बार भी घबराई नहीं, रोई नहीं। स्थिर चित्त से बोली—धर्मावतार! आसामी बेकसूर है।

—यह कैसे कह सकती हो।

आसामी क्यों निर्दोष है, सरयू एक लहजे में नहीं समझा सकी। लेकिन सरयू की बात मैं जितनी सुन रहा था—उतनी ही हैरानी हो रही थी।

सरकारी वकील ने कहा—पुलिस के सामने आपने तो दूसरी ही बात बताई थी।

सरयू बोली—सच बताने के लिए पुलिस ने ही मुझे रोका था···मैं जो कहना नहीं चाहती थी उसे ही मेरी बात मानकर उन्होंने लिख लिया।

—लेकिन क्या आपने पति को छोड़कर रुपयों के लिए प्रभुदयाल सिंह के यहां नौकरी नहीं की?

सरयू बोली—हां, नौकरी की। अखबार में विज्ञापन देखकर मैंने दरख्वास्त दी और मेरे रूप के कारण उन्होंने मुझे नौकरी भी दी।

—इसके पीछे आपके पति का प्रोत्साहन नहीं था ?

—पति ? कौन मेरे पति ?

—आसामी निशिकान्त आपके पति नहीं ?

—नहीं।

—फिर आप मांग में सिन्दूर क्यों भरती हैं ?

—क्योंकि मेरे पति जीवित हैं।

—वह कहां है ? उनका पता क्या है ?

सरयू बोली—वह अलीपुर जेल में हैं। खून के अपराध में वह आजीवन कारावास की सजा भोग रहे हैं।

—क्यों, उन्होंने किसका खून किया था !

जवाब में सरयू जो कुछ बोली वह बड़ा ही मर्मान्तिक था।

१२

सरयू की कहानी सुनकर मैं चौंक उठा। मैंने बहुत-से आदमियों का जीवन देखा है। लेखक की हैसियत से बहुत-से नर-नारियों के सम्पर्क में आना पड़ा है, उनकी जिन्दगी की कहानी भी सुनी है। सड़क पर, पार्क में, मनुष्यों की भीड़ में, एक आम आदमी की तरह लोगों के संस्पर्श में आया हूं। मुझे गरूर था कि किसीको देखकर या उससे बातचीत करके मैं उसे पहचानने की क्षमता रखता हूं।

लेकिन उस दिन सरयू की कहानी सुनकर मेरा सारा अहंकार धूल में मिल गया।

सरयू सिर्फ एक लड़की ही नहीं, मुझे लगा कि इतनी बुद्धिमती लड़की मैंने जीवन में पहले कभी नहीं देखी।

जब सरयू एक छोटी-सी बालिका थी और गांव में रहती थी, तब कोई उसे एक बार देखने आया।

उस समय सरयू विवाह के लायक हो चुकी थी। सरयू के पिता ने सरयू से कहा—बेटी, आज तू कहीं मत जाना। आज लोग तुम्हें देखने

आएंगे।

सरयू अवाक् हो गई थी। पूछा था—लोग मुझे क्यों देखने आएंगे? मैंने क्या किया है।

छोटी उम्र में ही सरयू की मां गुजर चुकी थी, इसलिए पिता ही सरयू के लिए मां और बाप दोनों थे। सरयू के पिता हरिहर एक तान्त्रिक थे। गृहस्थ आदमी जिस तरह के तान्त्रिक होते हैं, वैसे ही। सारा संसार-धर्म भी निभाते और रात में श्मशान जाकर जप-तप भी करते। वहां वह क्या करते यह तो किसीको पता नहीं था, लेकिन आधी रात गए जब वह घर लौटते, तब उनके कपाल पर सिन्दूर का एक बड़ा-सा टीका लगा रहता, गले में लाल जवा के फूलों की माला रहती और आंखें करौंदों की तरह लाल।

सरयू पिता को देखकर डर जाती। दिन में जो व्यक्ति स्वाभाविक रहता रात को वही चेहरा सरयू के भय का कारण बन जाता। उनकी सांस में एक कड़ी-सी गन्ध निकलती। उस गन्ध से सरयू को मिचली आती।

सरयू पूछती—आपके मुंह से यह कैसी दुर्गन्ध निकल रही है, पिता जी? आपने क्या खाया है?

सरयू के पिता कुछ नहीं बोलते। उनके मुंह से केवल 'मां, मां' का शब्द निकलता और वह अपने कमरे में घुसकर अन्दर से चटखनी बन्द कर लेते।

सरयू के साथ उसके पिता हरिहर का एक अद्भुत सम्बन्ध था। पिता को वह श्रद्धा एवं भय दोनों नजरों से देखती थी। इसी भय और श्रद्धा के दो अलग-अलग भावों में झूलकर सरयू का मन टूट गया था।

सरयू छुटपन से किसी धाई मां के हाथों पाली गई थी। जब थोड़ी बड़ी हुई तब उसे पता चला कि धाई मां उसकी मां नहीं, बल्कि एक नौकरानी है, जिसे पिताजी से हर माह तनख्वाह भी मिलती है।

सरयू ने अपने पिता से एक दिन पूछा भी—मेरी असली मां कहां है?

बेटी के प्रश्न से हरिहर चौंक उठा। बोला—क्यों? तुम्हारी धाई मां ही तुम्हारी असली मां है।

सरयू नाराज हुई थी। दुखी होकर बोली—यह झूठ है। आप सरासर

झूठ बोल रहे हैं।

हरिहर ने कहा—नहीं बेटी। मैं झूठ बोल रहा हूं, यह तुझसे किसने कहा। देखती नहीं, मैं हमेशा 'मां, मां' पुकारता रहता हूं। मां का बेटा कभी झूठ नहीं कहता, बेटी!

सरयू फिर भी ज़िद पर अड़ी रही। बोली—नहीं, मैंना ने कहा है कि मेरी मां मर गई है। धाई मां हमारी नौकरानी है।

इसके बाद सरयू से कुछ भी न छुपा रह सका। केवल यही बात नहीं पिता की और बातें भी मालूम हो गईं। मैंना से उसे यह भी पता लगा कि उसकी मां को उसके पिता ने ही मार डाला है।

सरयू को पहले तो विश्वास नहीं हुआ। मैंना से वह पूछती—तुझे यह सब कैसे पता चला?

मैंना बोली—मेरे पिताजी सब कुछ जानते हैं। एक दिन रात को सोते समय मां को वह सारी घटना बता रहे थे। मैंने सुन लिया।

छुटपन में ही पिता के सम्बन्ध में ऐसी जानकारी प्राप्त करके सरयू ज्ञानी बन गई। उसने यह सबक सीखा कि दुनिया में सभी स्वार्थी हैं। रात को श्मशान में पूजा करके लौटने पर पिताजी के मुंह से जो दुर्गन्ध निकलती थी, वह शराब की गन्ध थी। सरयू मैंना से पूछती—शराब का मतलब क्या है रे?

मैंना बोलती—मुझे पता नहीं शराब क्या चीज़ है? वह तो ज़हर है, ज़हर! शराब पीने से आदमी पागल हो जाता है।

—धत्! शराब अगर ज़हर ही होता तो पिताजी कब के मर जाते। पर वह तो मरते ही नहीं।

मैंना समझाती—तू बहुत बेवकूफ है, सरयू! शराब पीने से आदमी का दिमाग ठीक तरह काम नहीं करता। इसीलिए तो तेरे बापू का भी दिमाग ठीक नहीं है। अगर ठीक ही रहता तो क्या तेरी मां मरती? तेरे बापू ने ही तो तेरी मां को घूंसा मार-मारकर मार डाला।

उस दिन घर लौटकर सरयू ने खाना नहीं खाया। बस बिस्तर पर पड़ी रही।

धाई मां उसे बुलाने आई—उठ बेटी, खाना खा ले। तेरे लिए मैं भी

भूखी बैठी हूं।

सरयू बोली—मैं कुछ भी नहीं खाऊंगी, किसी भी हालत में नहीं खाऊंगी।

फिर भी धाई मां दुलार से उसे पुकारने लगी। अब सरयू तुनक उठी। बोली—मुझे क्यों सता रही हो? तुम मेरी कौन होती हो? तुम तो मेरी मां नहीं हो?

धाई मां घबराकर बोली—क्या कह रह रही है बेटी? मैं तेरी मां नही तो और कौन हूं?

—तुम तो नौकरानी हो, पिताजी से तनख्वाह लेती हो। तुम समझती हो, मुझे कुछ नहीं मालूम? मेरी मां तो मर गई है। मेरे पिताजी ने शराब पी कर मां को घूसा मार-मारकर मार डाला है।

इतना कहकर सरयू सिसक-सिसककर रोने लगी। सारे दिन नहीं उठी, खाना भी नहीं खाया। हर दिन की तरह उस रात भी हरिहर आधी रात घर लौटा, गले मे लाल फूलों की माला, लाल-लाल आंखें। 'मां, मां' कहता हुआ घर आया और बेटी की करतूत सुनी।

सब कुछ सुनकर हरिहर ने कहा—सरयू अभी क्या कर रही है?

—बिना खाए-पिए सो रही है।

—उसे सोने दो, तुम भी जाकर सो जाओ। कहकर वह रुका नहीं। अपने कमरे मे जाकर अन्दर से चिटकनी बन्द कर ली।

१३

इस घटना के बाद से सरयू बदली हुई लगने लगी। उस दिन से वह समझने लगी कि यह पृथ्वी केवल जीने के लिए ही नहीं, मरने के लिए भी है। साथ-साथ यह भी जान गई कि यहां मरना बहुत आसान है। यहां मरने के लिए इतने साधन हैं कि अगर कोई मरना चाहे तो उसे कोई बाधा भी नहीं पहुंचाएगा। और मरने के बाद केवल शान्ति ही शान्ति।

लेकिन जीना?

इस दुनिया में जीना ही सबसे कठिन है। जीने के लिए लड़ना पड़ता है, परिस्थितियों के साथ विरोध होता है। अगर कोई दस-पांच जनों के बीच सर ऊंचा रखकर जीना चाहता है, तो उसकी लड़ाई कभी खत्म नहीं होने की। उसे आमरण जूझना पड़ेगा। और अगर कोई सर उठाकर जी नहीं सकता, तो फिर उसका जीना ही क्या ?

कुछ लोग महत्त्वाकांक्षा लेकर ही पैदा होते हैं। अन्य लोगों की अपेक्षा इनकी इच्छा और आशाएं भी आकार एवं आयतन में ज्यादा होती हैं। और फिर ऐसे ही लोग देश के और समाज के कर्ता-धर्ताओं के सिरदर्द बन जाते हैं। ये अगर न रहें तो सरकार चैन की सांस लेगी और मनुष्य के समाज को भी नेतिवाचक शान्ति मिलेगी।

जिनको परिस्थितियां अनुकूल मिलती हैं वे किसी न किसी रूप में अपना सर ऊंचा उठा ही लेते हैं। किसीको मां-बाप का असीम प्यार मिलता है, तो किसीको अगाध सम्पत्ति। इनकी बात भी अलग है।

लेकिन सरयू ?

सरयू को छुटपन से क्या मिला, यह कहना मेरे जैसे लेखक के लिए मुश्किल है। क्या नहीं मिला इसकी सूची जरूर बना सकता हूं।

सरयू ने आंखें खोलते ही देखा, मैना के पास जो कुछ है उसके पास नहीं है। मैना के पिता नौकरी करते थे, उसके पिता नहीं। मैना के बाबूजी उसे प्यार करते थे, सरयू के पिता उसे प्यार नहीं देते। मैना की मां थी, उसकी नहीं। उसकी तो बस एक धाई मां थी, जो तनख्वाह पर नौकरी करती थी, रिश्ते में कोई नहीं थी। इस तरह हिसाब लगाकर सरयू ने देखा कि संसार में जो सब कुछ रहने से आदमी सुखी रह सकता है, उनमें से उसके पास कुछ भी नहीं था।

राजशाही में उसके घर के पास ही एक ताल था। एक दिन बिना किसीको कुछ कहे वह वहां चली गई। अगाध जल से ताल छलछला रहा था, इतना पानी मानो मनुष्य के सारे दुखों को मिटा सकता है। उसे लग रहा था कि एक डुबकी लगाने से उसके पास जो कुछ अब तक नहीं था वह सब मिल जाएगा।

अचानक उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे चारों तरफ एक हल्ला-सा हो रहा

है। उसने आखें उठाकर देखा—पिताजी सामने खड़े थे। 'मां, मां' की रट मुह में थी। आस-पास के लोगों में से किसीने कहा—इस लड़की को देखने के लिए घर में कोई नहीं है क्या ?

सरयू को लगा—यह कोई बड़े डाक्टर हैं।

सरयू के पिता ने कहा—क्यों ? घर में इसकी मां है।

—मां है ? मैंने तो सुना कि इसकी मां नहीं है।

—क्या कह रहे हैं डाक्टर साहब। मा तो सभीकी है। किसकी मां नहीं है, कहिए। मेरी मा है, आपकी है, उसी तरह मेरी सरयू की भी मां है। सारे विश्व ब्रह्माण्ड को मां ही तो देख रही है, चला रही है—नहीं तो दुनिया का क्या हाल होता ?

हरिहर को जो लोग जानते थे वे बोलने लगे—यह तो पिशाच है। नर-पिशाच। अगर श्मशान में विचरण करने का इतना ही शौक है तो फिर शादी करने की क्या जरूरत थी ? और अगर शादी की भी, तो लड़की के बाप होने की क्या जरूरत थी ? लड़की को जन्म देने पर उसकी सुख-सुविधा तथा शादी की व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी। उसके बदले 'मां मां' की रट लगाने से लड़की क्या कभी माफ करेगी ?

हरिहर लड़की को समझाते—जीवन की मुक्ति रुपयों में नहीं बेटी, भक्ति में है। भगवान के प्रति भक्ति, निष्काम भक्ति। निष्काम भक्ति को समझने लायक उम्र सरयू की तो थी नहीं। वह तो उस समय साड़ी, गहने और सुन्दरता चाहती थी, और शायद एक पति भी। गांव की और लड़कियां जो कुछ चाहती थीं सरयू भी वही चाहती। इसलिए पिता की बात सुनकर भी वह कोई जवाब नहीं देती। सोचती रुपये नहीं हैं, इसीलिए पिताजी उसे भक्ति की बातें सुनाते हैं। जो आदमी उसकी मां की हत्या कर सकता है, उसके मुह से भक्ति की बात सुनकर सरयू को पिता पर घृणा हो जाती।

वकील ने पूछा—जब तुम्हारे पिता ने तुम्हारी मां की हत्या की, तो इसके लिए उनपर कोई मुकदमा नहीं चला ?

सरयू बोली—असल में पिताजी ने मां का खून नहीं किया था। मैंने भी पहले ऐसा ही सुना था। मेरी उम्र कम थी, इसलिए मेरी सहेली मैना जो कुछ भी मुझे कहती, उसे मैं सच समझती। उसी ने मुझे ऐसा ... ...

मेरा जीवन वर्वाद कर डाला। असल में मेरी मां किसी भयानक बीमारी में चल बसी थी। पिताजी की गलती सिर्फ इतनी ही थी कि किसी वड़े डाक्टर को दिखाने के वदले वह श्मशान में जाकर मां काली से प्रार्थना करते रहे। जव मुझे यह मालूम हुआ, वहुत देर हो चुकी थी। पिताजी तव तक जीवित नहीं रहे। अगर रहते तो उनके पैर छूकर मैं उनसे अपने सभी अपराधों के लिए माफी मांगती।

१४

इस तरह मुकदमे की कई तारीखें वदलीं। सरयू गवाह के रूप में अपना वयान देती। पुलिस की कड़ी निगरानी में निशिकान्त भी अदालत में बैठा रहता। वह सव कुछ चुपचाप सुनता रहता। किसी भी दिन उसके चेहरे पर ज़रा भी शिकन नहीं दिखाई दी। वह निर्विकार, निरासक्त हो केवल सरयू की तरफ देखता रहता। कोर्ट-रूम भीड़ से भरा रहता। जो खुद हत्या नहीं कर सकते, पर खून की वासना जिनमें रहती है वे अपनी भूख कोर्ट-रूम में बैठकर मिटाते हैं। लेकिन मेरी दिलचस्पी और कारणों से थी। सरयू के इस मुकदमे से जैसे मेरी दिव्यदृष्टि खुल गई। सच में, हम कितनी आसानी से किसीके भी सम्वन्ध में एक मनगढ़न्त-सी राय वना लेते हैं और केवल किसीका वाहरी रूप ही देखकर किसीकी मीमांसा करने वैठ जाते हैं।

खैर, अन्त में राजशाही में ही सरयू को देखने के लिए वर-पक्ष के लोग आए। पूछा—खाना-वाना वना सकती हो?

सरयू ने सर हिलाकर 'हां' कहा।

फिर प्रश्न हुआ—एक वार कमरे के इस कोने से उस कोने तक ज़रा चलकर दिखाओ वेटी, देखें तुम कैसा चलती हो।

सरयू ने वैसा ही किया।

—तुम्हारे पैर में यह दाग कैसा है?

पैर में कटे का एक निशान था। वचपन में वह ताल में नहाने गई थी, और वहीं किसी तरह चोट आ गई थी। वात कोई गम्भीर नहीं थी। कितने

ही लोग गिरते-पड़ते हैं, पैर में चोट भी आती है, शरीर के किसी अंग में कोई निशानी दाग भी रह ही जाता है, लेकिन इनके लिए किसीकी शादी नहीं रुकती।

लेकिन सरयू का भाग्य ऐसा ही था कि उसी एक मामूली वजह से बार-बार शादी के रिश्ते टूटते गए।

लेकिन क्या सच में ही इसके लिए किसीका विवाह रुक जाता ? राजशाही के एक छोटे-से गांव की लड़की होने के कारण क्या उनकी शादी ही नहीं होती ? फिर अन्त में जब मैना की शादी भी हो गई तब सरयू को लगा कि अब उसकी शादी की कोई आशा नहीं। धाई मां ढाढस बंधाती -- मत रो बेटी। दुख मत कर। भगवान को याद कर। देख रही हो न, मालिक तुम्हारी शादी के लिए कितनी चेष्टा कर रहे हैं। अन्त में सरयू गुस्सा जाती। चिल्लाकर बोलती—तुम मेरे सामने से निकल जाओ। मैं तुम्हारा मुंह भी नहीं देखना चाहती। तुम्हारे लिए ही तो पिताजी ने मेरी मां को मार डाला है। उस दिन ताल में डूब मरती तो अच्छा होता। तुम लोगों ने क्यों मुझे बचाया। तुम ही इस घर की बर्बादी की जड़ हो। इस घर से चली जाओ, नहीं तो मैं नहीं बचूंगी। इसके जवाब में धाई मां कुछ भी नहीं कहती। बस, उदास होकर कमरे से बाहर चली जाती।

१५

खैर। सरयू अन्ततोगत्वा ससुराल गई ही। ससुराल पहुंचकर वह अपने बचपन की बात सोचा करती। आंखें भर आतीं। बचपन से ही ससुराल के लिए उसके दिमाग में एक धारणा थी—बड़ी सुन्दर-सी। वहां उसे अपार सुख मिलेगा। वह वहां की गृहलक्ष्मी होगी। सास-ससुर उसे बेटी की तरह प्यार करेंगे। कोई उसे 'भाभी' कहकर पुकारेगा तो कोई 'बहू'। उसके नाम से केवल एक आदमी बुलाएगा।

लेकिन शुरू से ही उसकी धारणा को धक्का लगने लगा।/ आदमी बड़ा अच्छा था—सीधा और सरल। घर की उपेक्षा भी

ख पाता। सरयू देखती—सबके खाने की थाली में दाल-भात, सब्जी, छली रहती, पर उसके पति के लिए कुछ नहीं। सास जब कहती—बहू, ीकान्त आया है उसकी थाली लगा दो तो सरयू पूछती—उन्हें मछली हीं दोगी मां ? आप शायद देना भूल गईं।

सास बोलती—अब और मछली तो है नहीं, सब खत्म हो चुकी। श्रीकान्त ऐसे भी पसन्द नहीं करता।

सरयू बोलती—कड़ाई में तो है, दीजिए न ?

—कैसी बात कह रही हो बहू ? तुम्हारे बूढ़े ससुर के लिए इतना रख छोड़ा है, तुम्हारी नजर उस तरफ भी है। कैसे घर की हो। बाप ने इतनी भी शिक्षा नहीं दी ? मैं श्रीकान्त की मां हूं, मुझसे अधिक तुम्हारी उसकी...

इसके बाद सरयू कुछ नहीं बोलती। थाली दालान में रख आती। श्रीकान्त भी एक निरीह आदमी की तरह दिन-भर खेत पर काम करता। वह भी संयुक्त परिवार का एक सदस्य था, पर सबसे अधिक काम उसे ही करना पड़ता। पर खाने के मामले में उसके प्रति पूरे घर की अवहेलना होती। इसके लिए भी श्रीकान्त के मन में कोई शिकायत नहीं होती। बस, खाने-पहनने को मिल जाए, चाहे वह जैसा भी हो। सूखा खाना, या मैली-फटी धोती, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। घर में किसे अधिक प्यार मिल रहा है या किसकी खातिर हो रही है, यह देखने के लिए उसके पास फुर्सत भी नहीं थी और न ही देखने की आंखें। और इस सम्बन्ध में उसे कुछ कहा भी जाता तो वह गुस्सा जाता। कहता—सरयू, इन सब बातों को लेकर सोचा मत करो। मुझे तो कोई कष्ट हो नहीं रहा है।

सरयू बोलती—तुम्हें न सही, मुझे तो कष्ट पहुंचता है।

—तुम क्यों व्यर्थ में दुख पाती हो ?

—मैं अगर तुम्हारे लिए न सोचूं तो क्या करूं, यही बताओ।

श्रीकान्त अनायास कह देता—क्यों ? रसोई में जाकर खाना बनाओ, भाभी और मां के साथ-साथ काम में लगी रहो। उन्हें सहायता दो। इतनी बड़ी गृहस्थी में काम-काज की क्या कमी। धान उबालो, कपड़े धोओ, गोबर लीपो। सब लोग काम के पीछे परेशान रहते हैं—तुम उनकी मदद करो।

सरयू बोलती—तुम क्या समझते हो, मैं यह सब कुछ नहीं करती ?

गोबर लीपना, धान उबालना, कपड़े धोना छोड़कर क्या मैं साज-शृंगार कर मेम बनी फिरती हूं ? उपन्यास पढ़ती रहती हूं ?

श्रीकान्त झट समझौता कर लेता। कहता—तुम मुझपर नाराज मत हो, मैं तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहता था।

—अभी-अभी तो ऐसा ही कह रहे थे ?

श्रीकान्त बोलता—मेरे पास इस समय ज्यादा समय नहीं है। खेत में जन-मजदूर खट रहे हैं, आज दस बीघा जमीन पर हल चलाया जाएगा, मजदूरों के नाश्ते का इन्तजाम करना है। काम ठीक से चले इसकी निगरानी करनी है। रात को लौटकर तुम्हारी बात सुनूंगा।

सरयू बोलती—रात को भी तुम्हारे पास वक्त कहां होता है ? क्या तुम्हें मैं नहीं पहचानती ? आते ही चैन की नींद सो जाओगे।

—वाह ! मैं केवल सोता हूं ? तुम्हें प्यार नहीं करता ? कहकर सरयू की तरफ बढ़ता। सरयू दूर हट जाती। बोलती—रहने भी दो, ऐसा दिखावटी प्यार मुझे पसन्द नहीं। जाओ, तुम्हारे काम पर जाने में देर हो रही है। हर्जा होगा।

श्रीकान्त को और कोई उपाय नहीं सूझता। कहता—तुम तो काम पर निकलते समय नाराज हो रही हो। अब मैं क्या करूं ?

—करोगे क्या ? तुम्हारे लिए जब तुम्हारा काम ही बड़ा है तब काम ही करो। मैंने तुम्हें रोक नहीं रखा है।

—तो फिर तुम मुस्कराओ। तुम्हारा हंसता हुआ चेहरा देखकर जाऊंगा। जरा, हंसकर बातें करो।

—हंसी ? जब मैं मरने लगूंगी तब हंसूंगी। उससे पहले नहीं।

—कैसी फालतू बातें कर रही हो ? मैं घर से निकल रहा हूं और तुम अमंगल की बात कर रही हो ?

—अमंगल कैसा ? तुम्हें तो कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा। तुम अपने प्यार के जन-मजदूरों को खिलाओ ताकि वे तुम्हारे काम में फांकी न दें। बस तुम्हें तो स्वर्ग मिल जाएगा। मैं मरूं या जीऊं, तुम्हें इसकी चिन्ता ही क्या ?

श्रीकान्त को गुस्सा आ जाता। कहता—तुम मुझे क्रोधित करना चाहती

हो। मैं सोचता हूं कि माथा गरम न करूं पर तुम इसी पर तुली हो। बता सकती हो कि मेरे क्या करने से तुम सुखी रह सकती हो, हंस सकती हो ? तुम क्या चाहती हो—मैं खेत पर न जाऊं, कामकाज सब छोड़-छाड़ तुम्हारा आंचल पकड़कर घर बैठा रहूं ? और अगर ऐसा नहीं चाहती हो तो मैं दीवार से अपना सर फोड़ लेता हूं, कहो क्या चाहती हो तुम ? यह सुनकर सरयू गम्भीर हो जाती। कहती—तुम किस दुख से अपना सर फोड़ोगे। सर तो मुझे फोड़ना चाहिए। शायद मेरा कच्चा ताजा खून देखकर तुम्हें होश आ जाए। कहकर वह साड़ी के पल्ले से आंखें ढककर कमरे से बाहर चली जाती।

श्रीकान्त पीछे-पीछे दौड़ा जाता। पुकारता—सरयू, सुनो भी, सुनती जाओ।

सरयू श्रीकान्त को जवाब नहीं देती, बदले में श्रीकान्त की मां आती। पूछती—बेटा, तूने बहू को कुछ कहा है क्या ?

—क्यों ?

—वह रो रही है। तूने उसे जरूर कुछ कहा होगा।

श्रीकान्त कहता—तुम्हारी बहू क्यों रो रही है, यह मैं कैसे बता सकता हूं, तुम्हीं बेहतर जानती होगी।

—बिना कारण तो कोई रोता नहीं, कहो क्या बात है ? कुछ कहा है उससे ?

श्रीकान्त कहता—मुझे कहने की क्या जरूरत है। लेकिन मेरी थाली में ढंग का खाना नहीं रहता, मछली नहीं रहती, दशहरे में सबके नये कपड़े बनते हैं, पर मेरी बारी आती है तो पैसे घट जाते हैं, मैंने इसके लिए तुम लोगों को कभी कुछ नहीं कहा। मैं दिन-भर खटता रहता हूं और बड़े भैया हवा खाते फिरते हैं। यात्रा, नाटक में व्यस्त रहते हैं, इसके लिए मैंने पिताजी, भैया-भाभी या तुम्हें कभी कुछ कहा है ?

श्रीकान्त की मां अपने गाल पर हाथ रख अवाक् होकर सुनती। बोलती—तुझसे यह सब बहू ने कहा है ? इतनी छोटी बुद्धि की है !

श्रीकान्त तुरन्त समझ जाता कि पत्नी के विरुद्ध यह सब कहना अन्याय है। अपने को झट सम्भालकर कहता—बहू की बात छोड़ो मां, उसने क्या

कहा और नहीं कहा। लेकिन मेरी बातों के जवाब में अगर कुछ कहना है तो कह सकती हो नहीं तो फालतू बातें कहने-सुनने के लिए मेरे पास वक्त नहीं है।

आज दस बीघा जमीन में हल चलाया जाएगा। देखभाल करनी है, घर में खाने वाले लोगों की कमी नहीं, लेकिन काम सारा मुझे ही करना पड़ता है, क्यों? —कहते-कहते श्रीकांत कुछ अनमना-सा हो जाता। शायद काम की बात सोचने लगता। कहता—मैं चल रहा हूं, मां, लौटने में शाम हो जाएगी। और इतना कहकर जल्दी-जल्दी खेत की तरफ कदम बढ़ा देता। घर के मालिक प्राणकान्त बूढ़े हो चुके थे। उन्होंने अपने ही इतनी सम्पत्ति इकट्ठी की थी। जवानी में बैल की तरह खटते थे, खाते भी उसी मात्रा में थे। पका हुआ पूरा कटहल अकेले ही खा जाते। जी-जान से परिश्रम कर, उन्होंने खेती-बाड़ी, जमीन-जायदाद बनाकर अपने को गांव में प्रतिष्ठित कर लिया था। चार मन की एक छोटी थाली में ही अपना काम चला लेते। श्रीकान्त पिता पर ही गया था।

प्राणकान्त भी दिन-भर खेत में काम करके थके-मांदे पसीने से तर सीधे कुएं पर नहाने चले जाते। बड़ा लड़का शशिकान्त उनकी कोई मदद नहीं करता, सिर्फ मुहल्ले के अश्विनी कुंडू की तेल की दूकान पर बैठकर नाटक का रिहर्सल करता। जब भूख लगती, खाना खाने के लिए घर पर आ धमकता।

प्राणकान्त को नहाते-नहाते शशि की याद आती और वह पुकारते—शशि! ओ शशि!

पत्नी आकर पूछती—क्यों, क्या चाहिए? शशि घर पर नहीं है।

प्राणकान्त कहते—आखिर वह रहता कहां है? मेरे किसी काम में वह मदद नहीं करता। तुम जरा उसे कह भी नहीं सकतीं कि मेरे साथ खेत पर जाया करे। एक लोटा पानी भी अगर खेत पर पहुंचा दे तो कम-से-कम मेरी प्यास तो बुझ जाएगी। इतनी प्यास लगती है कि छाती फटने लगती है।

पत्नी बोलती—प्यास लगती है तो एक जग को घर पर से लेकर पानी लेकर क्यों नहीं लेते, पानी के साथ गुड़ भी देना दूंगी।

प्राणकान्त कहते—अच्छी बात कही तुमने! काम में तुम्हें कहीं वक्त

आएगा घर से पानी लेने ? और तुम्हारा लड़का केवल अश्विनी कुंडू की दुकान पर अड्डा मारेगा ?

पत्नी बोलती—अभी बच्चा ही तो है। इसलिए गपशप में फंस जाता है। बड़ा होगा तो गृहस्थी निभा ही लेगा। बहू आएगी, ज़िम्मेदारी बढ़ेगी। सब ठीक हो जाएगा।

प्राणकान्त बात को आगे और नहीं बढ़ाते। केवल कहते—तुम प्यार से शशि को बिगाड़ रही हो। इसका नतीजा उसके लिए अच्छा नहीं होगा। कहकर वह दालान में ही बैठकर किसी तरह खाना खाकर फिर खेत चले जाते। शशि घर पहुंचकर दरवाज़े पर से ही चिल्लाता—मां, खाना लाओ।

थाली देकर मां पूछती—हाथ-मुंह भी तूने धोया है या वैसे ही खाने बैठ गया।

पर शशि को बात करने की भी फुर्सत नहीं रहती। जल्दी-जल्दी ग्रास भरता रहता। अश्विनी कुंडू शशि का हमउम्र था, दोस्त था। उसका बाप भारद्वाज कुंडू किसी तरह तेल की दुकान बेटे को सौंप गया था। सब तरह का तेल—सरसों, नारियल तथा मिट्टी का तेल वहां बिकता था। भारद्वाज कुंडू को लोग भारद्वाज तेली कहकर पुकारते। कुंडू जी कहते—पत्नी हो या पुत्र, रुपया ही सब कुछ है, छाती का बल है। रुपया रहेगा तो दुख भी नहीं रहेगा।

प्राणकान्त भारद्वाज कुंडू को कहते—तुम तो पत्नी और पुत्र के बारे में भी कहते हो कि वे तुम्हारे कोई नहीं है, जब तुम नहीं रहोगे तब ? मैं या तुम, अक्षय आयु लेकर तो जन्मे नहीं हैं। मरने पर तो बेटा ही कारोबार संभालेगा। और वे ही लड़के यदि आदमी न बन सके तब ?

भारद्वाज कुंडू कहता—तुम्हारा भी क्या कहना ? मेरे मरने के बाद मेरे लड़के ने दुकान चलाई या उसे उठा दिया यह देखने के लिए कौन आएगा ? इस युग में अगर बेटे बाप का दुःख समझते तो चिन्ता ही किस बात की थी।

भारद्वाज कुंडू पहले ही मर गया। प्राणकान्त की तरह अगर उसे जीना पड़ता तो अपनी दुकान देखकर कुंडू दुख ही पाता। उसकी दुकान पर दिनभर ताश का अड्डा जमता। शशिकान्त भी वहीं रहता। भारद्वाज कुंडू ने

बड़े शौक से इस दुकान को बनाया था। वह अपने हाथों से तेल तौलता। जहां वह बैठता, उसके पीछे के कमरे में आंखों पर पट्टी बांधकर कोल्हू का बैल गोल चक्कर में घूमता रहता और सरसों के बीच से शुद्ध सरसों का तेल निकलता रहता। उसी बाप की गद्दी पर बैठकर अश्विनी कुंडू तेल बेचने की बजाय यार-दोस्तों के साथ ताश खेलने में ज्यादा रुचि लेता। शाम को इसी दुकान पर नाटक का रिहर्सल होता। कभी नल-दमयन्ती, तो कभी दुष्यन्त-कीर्ति, दान-यज्ञ और कभी पाषाणी। रिहर्सल में कभी-कभी रात बीत जाती। दिन में जब ईंट और लालपान की होड़ लगती तब अश्विनी कुंडू की विधवा मां दुकान पर अश्विनी को खाने का तकाजा करने आती। कई बार बुलाने के बाद मजबूरन अश्विनी को खाना खाने के लिए उठना पड़ता। पत्ते ज्यों-के-त्यों रखे रहते। नहाने और खाने के बाद फिर वही से खेल शुरू हो जाता। और फिर सूर्यास्त के साथ-साथ हारमोनियम और तबला बजने लगता। शशिकान्त अच्छा गाना गा सकता था और बाजा भी बजा लेता। अभिनय भी अच्छा कर लेता। प्रधान भूमिका उसे ही दी जाती। 'दुष्यन्त-कीर्ति' में वह हस्तिनापुरपति राजा दुष्यन्त की भूमिका निभाता। जब तक नाटक का रिहर्सल चलता, वह पदों की आवृत्ति करता रहता।

मां पूछती—खाना खाते समय भी तू क्या बड़बड़ाता है? शशिकान्त मन ही मन बड़बड़ाता रहता :

तपोवनवासी
पवित्र ऋषियों के यज्ञ में
डाल रहे हैं विघ्न, ये दुष्ट राक्षस
ध्वंस कर उन राक्षसों का
लौटा दूंगा मैं
शान्ति तपोवन की।
तपस्वी ऋषियों का व्रत है पुण्यमय और धार्मिक।
उन्हें विपदा से मुक्त करा कर
हो जाऊंगा धन्य
उनके आशीर्वाद से!

मां फिर पूछती—तू क्या बक रहा है ?

शशिकान्त कहता—पत्नी को प्रहार करता है ? क्या कह रही हो मां ?—प्रसेन दुश्चरित्न बन गया है ? यहां कोई है ? प्रसेन को अभी मेरे समक्ष उपस्थित करो !

मां कहती है—और कुछ दूं वेटा ?

शशिकान्त वोलता—मेरी मां, तुम मेरी गर्भधारिणी मां हो, फिर भी शैशव से तुमने जननी की तरह प्रतिपालन किया है, इसलिए तुम्हारे गर्भ-जात प्रसेन को मैं अपने सहोदरतुल्य समझकर अपना भुज-वीर्य-रक्षित सुशासित राज्यभार निःसंकोच उसे अर्पण कर रहा हूं। लेकिन अगर प्रसेन दुश्चरित्र है, कुसंसर्ग में जाता है तो—

मां समझ जाती कि वेटा नाटक का रिहर्सल कर रहा है। इसलिए लड़के को अनमना देखकर थोड़ा और खाना थाली में रख देती। लड़का पूरा खाना खा नहीं पाता, फिर भी शशिकान्त पर मां का प्यार कुछ अधिक ही था। शशिकान्त क्या खाएगा, पहनेगा, इसपर कभी उसने ध्यान नहीं दिया।

फिर धीरे-धीरे वच्चे वड़े हो गए। उनकी वहुएं आ गईं। प्राणकान्त भी बूढ़े हो गए। एक दिन उन्होंने श्रीकान्त को अपने पास बुलाया। वोले—मैं आज खेत पर नहीं जा सकूंगा। आज से तुम जाओ। मेरा काम-काज भी आज से तुम ही देखा करो—क्यों देख सकोगे ?

श्रीकान्त वैसे भी धीर-गम्भीर स्वभाव का व्यक्ति था। दायित्व कन्धे पर लेने के वाद वह और भी शान्त और गम्भीर वन गया। उस दिन से सारा भार अनायास श्रीकान्त के कंधों पर आ गया। किसीको किसी भी चीज की ज़रूरत होती, वह श्रीकान्त को ही याद करता। खेत और ज़मीन के अलावा मुंशी और पेशकार का भी काम होता है। ज़मीन का लगान देने के लिए सरकारी सरिश्तेदार और तहसीलदार के पास कचहरी में जाना पड़ता है। यह सव आख़िर करता भी कौन ? शशिकान्त कर सकता था, पर उसके पास फ़ुर्सत ही नहीं थी। वस अश्विनी कुंडू की दुकान पर ताश खेलता रहता। प्राणकान्त की पत्नी वोलती—शशिकान्त सीधा आदमी है, यह सव काम श्रीकान्त को ही करने के लिए कहो। शशिकान्त सव विगाड़

कर रख देगा।

प्राणकान्त बोलते—दिन-भर ताश खेलने से कहीं गृहस्थी चलेगी ? उसे ही तो एक दिन सब कुछ संभालना पड़ेगा। यह सुनकर पत्नी क्रोधित हो जाती। कहती—शशि पर तुम्हारा इतना आक्रोश क्यों है ? श्रीकान्त भी तो बैठा रहता है। वह क्या काम नहीं कर सकता ? उसे काम पर भेजा करो।

—श्रीकान्त बैठा रहता है ? तुम देख नहीं सकती ? आज उसे रेल की हाट पर भेजा है ? वहां से धान का भाव पता करके आएगा। इस बार महाजन के यहां कुछ धान बेचूंगा।

बातचीत के दौरान श्रीकान्त आ जाता। पिता की बात वह सुनकर बोलता—क्या काम है कहिए न पिताजी, मैं उस तरफ ही जा रहा हूं, कर दूंगा। श्रीकान्त भी वास्तव में बेशर्म था। बुद्धि-विवेचना की उसमें कमी थी। घर में और बाहर उसे ही खटना पड़ता है, उसका बड़ा भाई ताश खेलता रहता है, नाटक करता रहता है, और बाकी समय अंगड़ाई लेता रहता है, यह देखकर भी श्रीकान्त अनदेखी कर देता।

जब सरयू इस घर की बहू बनकर आई तब उसकी नजर में सब कुछ बहुत जल्दी ही स्पष्ट हो गया। उसने देखा कि उसके ससुर एक तो बूढ़े और उसपर वातरोग से पीड़ित—ठीक से चल-फिर भी नहीं सकते थे। उनकी देखभाल करने के लिए भी कोई नहीं था। जो कुछ देखना था, वह श्रीकान्त ही करता था। खेत से लौटते ही वह बाप को देखने पहुंच जाता।

पिता बेटे से पूछते—सरसों कटवाने की कोई व्यवस्था की है बेटा ?

—हां पिताजी, आज ही से कटाई शुरू हो गई है।

—मजदूरी कितनी तय की ?

—डेढ़ रुपये रोज।

—डेढ़ रुपये ? मैं तो बराबर एक रुपया देता था।

—आजकल मजदूरी बढ़ गई है। एक जोड़ी कपड़े की कीमत बीस रुपये हो गई है। मजदूर हाथ-पैर पकड़कर रोने लगे, इसलिए 'ना' नहीं कर सका।

ा रहा हूं, दुबारा लौटूंगा नहीं। रात को ही लौटूंगा।
—मां कहती—नहीं आओगे, मेरी बला से ! मुझे क्या धमकी दे रहे हो ?

शशिकान्त को अचानक नाटक का अपना पार्ट याद आ जाता और वहीं खड़ा-खड़ा वह बड़बड़ाने लगता—

कोई भय नहीं है मां, स्वर्ग है; यह
वह रही है मन्दाकिनी।
यहां नहीं कर सकता कोई जीव हत्या।
पर ओ दुष्ट दानव !
देवता पर आक्रमण बार-बार ?
बढ़ गया है तेरा साहस ?
तो देख ! देवताओं ने नीति अपना
ली है अब जैसे को तैसे की।
देखना अब यह है,
राज्य टिकेगा और कितने दिनों तक ?
अपने पराजय के कलंक को रख दो
सम्राट के पैरों के नीचे;
रह नहीं सकता स्थापित
शासन अत्याचार का !

ससुर प्राणकान्त असहाय-अपाहिज की तरह पड़े-पड़े सब सुनते। बीच-बीच में वे पूछते—किससे बातें कर रही हो ?

इसी तरह संसार का चक्र चल रहा था। सरयू सोचती—अगर उसका कोई मायका रहता तो कुछ दिन वहां रहकर आती। कुछ दिनों के लिए तो कम-से-कम चैन की सांस ले सकती। पर पिता की मृत्यु की खबर उसे चिट्ठी से ही मिली थी। खबर पाकर वह रोई नहीं। बाप के लिए हर लड़की के मन में एक समवेदना होती है, लेकिन पिता की मृत्यु ने सरयू के मन में कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं की।

श्रीकान्त कभी-कभी कहता—क्या करोगी कहो ? मां-बाप तो चिर-

काल तक किसीके भी नहीं रहते। दुख करने से क्या लाभ ? सरयू बोली—मुझे दुख तो हो नहीं रहा है।

श्रीकान्त अवाक् रह जाता—दुख नहीं हो रहा है ?

सरयू कहती—नहीं। पिताजी के लिए मेरे मन में ज़रा भी दुख नहीं। जिस दिन मेरी मां मर गई, उसी दिन से मैंने समझ लिया कि बाप के घर से मेरा कोई नाता नहीं। कोई उपाय नहीं था, इसलिए मैं वहां रहती थी। मेरे दुख का कारण कुछ और है।

—बोलो क्या कारण है ?

—तुम नहीं समझोगे—

श्रीकान्त कहता—मैं नहीं समझूंगा, इसके क्या मानी ? तुम्हारी इतनी बातों को समझ सकता हूं और एक बात नहीं समझूंगा ?

—तुम नहीं समझ सकते। अगर समझते तो मुझे दुख ही किस बात का था ?

—अच्छा तो तुम बोलकर ही देखो। मैं समझता हूं या नहीं ? तुम्हें कौन-सा कष्ट है ? मैं तुम्हारा पति हूं ? मुझे कहने में तो कोई हानि नहीं ?

सरयू कहती—तुम सो जाओ। नहीं सोने पर तुम्हारी तबियत बिगड़ जाती है।—कहकर वह करवट बदलकर सो जाती।

श्रीकान्त कहता—मैं अभी नहीं सोऊंगा। पहले तुम बताओ। मुझे तो अभी नींद आई नहीं है।

सरयू बोलती—लेकिन मुझे नींद आ रही है। मैं तो अभी सोऊंगी।

—थोड़ी देर के बाद सो लेना—क्या हर्ज है ?

—मेरी लाभ-हानि के लिए तुम्हें सोचने की ज़रूरत नहीं।

—गुस्सा क्यों कर रही हो सरयू ? यह गुस्सा ही तुम्हारे लिए काल बन जाएगा, जानती हो ? इतना गुस्सा अच्छा नहीं। बोलो न सरयू, तुम्हें क्या कष्ट है ?

सरयू कहती—हटो। मुझे छुओ मत।

श्रीकान्त कहता—मैं अच्छी बात कह रहा हूं, और तुम नाराज़ हो रही हो।

सरयू झल्लाकर बोलती—अच्छी बात तुम्हें करने की ज़रूरत नहीं। तुमसे अच्छी बातें सुनते-सुनते अब तक मेरे कान सड़ गए हैं। दया करके मुझे और अच्छी बातें मत सुनाओ। मैं तुम्हारे पैर पकड़ती हूं। मुझे थोड़ी रिहाई दो।

बात किस तरह बिगड़ जाती—सरल-प्राण श्रीकान्त समझ नहीं पाता। बोलता—मैं तुम्हारी बात नहीं समझ पा रहा हूं, सरयू! फिर थोड़ा आसान बना के ही बोलो। मैं भी समझने की थोड़ी कोशिश करूंगा।

—मैंने तुमसे कहा न कि मेरे बारे में तुम्हें सोचने की ज़रूरत नहीं।

—मैं नहीं सोचूंगा तो तुम्हारे लिए कौन सोचेगा? मेरे सिवा तुम्हारा यहां अपना है कौन?

सरयू कहती—दुनिया में जिसका अपना कोई नहीं होता, क्या उसके दिन नहीं कटते? वे सब क्या मर जाते हैं?

—फिर मरने की बात कर रही हो। ऐसी कौन-सी बात हो गई है कि मरने की बातें कर रही हो? मेरा कहा कुछ बुरा लगा है?

सरयू बोलती—रात को और मुझे तंग मत करो। दिन-भर तुम्हारे घर के लोग सताते हैं, रात को तुम सोने नहीं देते, मैंने कौन-सा पाप किया है कि दिन में, रात में, मुझे कोई चैन से नहीं रहने देता। कहो मेरा क्या अपराध है?

श्रीकान्त समझने की कोशिश करता—माथा गरम मत करो सरयू। व्यर्थ में कष्ट पाओगी। मुझे देखो। मुझे देखकर समझो। डेढ़ सौ बीघा ज़मीन, उसकी देखभाल, खेती, आढ़त का हिसाब, खाद के लिए बी० डी० ओ० आफिस के बाबुओं के पास धरना, लेवी के हंगामे, सब मुझे अकेले ही करना पड़ता है, मुझे कोई मदद नहीं देता। भैया को तो देख ही रही हो। केवल नाटक लेकर ही व्यस्त हैं।

सरयू कहती—उनका भी क्या कसूर? तुम्हारे जैसा बेवकूफ भा[ई] रहता तो मैं भी उससे बेगार खटवाती।

—बेगार खटना क्यों कह रही हो! जिसका जैसा स्वभाव है, व[ह] वैसा ही करता है। और अगर मैं आज से कुछ न देखूं तो कौन देखेगा य[ह] सब? और है ही कौन? पिताजी तो अशक्त हो गए हैं।

सरयू नाराज होकर कहती—तुम खटो न ! मैंने तुम्हें मना ही कब किया है ? तुम खेती-बाड़ी देखो, जन-मजदूर को खटवाओ, आढ़तियों का हिसाब मिलाओ, बी० डी० ओ० आफिस दौड़ो, लेवी का हंगामा हल करो। यही सब यदि करना था तो शादी क्यों की ? अपने साथ मुझे क्यों जोड़ा ? शादी के पहले इतना तो बता देते कि इस घर की बहू बनने पर उठते-बैठते सुबह-शाम केवल लात और गाली खानी पड़ेगी। बाप की गाली सुनाई जाएगी। तुम कह सकते थे कि बड़ी जेठानी सौरी से निकलती ही नहीं, जिन्दगी-भर उसकी सेवा करनी पड़ेगी। यह सब मुझे क्यों नहीं कहा गया ? मेरी बात का जवाब दो।

श्रीकान्त पत्नी का अभियोग सुनकर हतप्रभ रह जाता।

सरयू फिर बोलती—गूंगे क्यों बन गए ? मेरी बातों का जवाब देते नहीं बन रहा या सुनाई नहीं पड़ रहा ? सच्ची बात सुनाई भी तो नहीं पड़ती !

श्रीकान्त बोलता—तुमने अब तक तो कुछ भी नहीं बताया था।

—क्या बताऊं, बोलो ? जबान से ही सब कुछ कहना पड़ेगा ? तुम देखते नहीं। सब चीजों पर तुम्हारा इतना ख्याल रहता है, केवल मेरे ही बारे में तुम्हें कुछ दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं पड़ता ?

श्रीकान्त कहता—तुम सच-सच बताओ सरयू, तुमको किसने क्या कहा है ? अब तक मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम था। अब बताओ क्या-क्या हुआ है ? मैं सबसे इसका जवाब मांगूंगा। भैया, मां, पिताजी, किसने तुम्हें क्या कहा है ?

—तुम्हारे खाने-पहनने के लिए कभी कुछ कहती हूं तो हजार गाली खानी पड़ती है, क्योंकि मैं घर तोड़ना चाहती हूं। पत्नी होकर पति की सुख-सुविधा का ख्याल रखना, तुम्हारे इस घर में गुनाह है क्या ? मैं अगर इतनी ही खराब हूं, तो मुझे यहां मारने के लिए रखने की जरूरत ही क्या थी ? मुझे निकाल दो, मैं कहीं भी चली जाऊंगी। लड़कियों की मां का एक घर होता है, भगवान ने मेरे लिए वह भी नहीं छोड़ा। न बाप के घर में जगह थी और न पति के घर में जगह मिली। तुमसे भीख नहीं मांगती, पर जरूरत पड़ी तो औरों से भीख मांग लूंगी।

कहते-कहते सरयू बिलख-बिलखकर रोने लगती। आंसू बन्द ही नहीं होते। श्रीकान्त का दिमाग काम नहीं करता। वह बिस्तर से उठ जाता, दरवाज़े की तरफ भागता। यह देख सरयू डर जाती। पूछती—कहां जा रहे हो?

श्रीकान्त कहता—अभी चलकर इसका फैसला करूंगा, तभी मुझे चैन मिलेगा।

सरयू श्रीकान्त का हाथ थाम लेती। बोलती—इतनी रात को तुम क्या फैसला करोगे? सुबह होने दो, फिर देखा जाएगा।

श्रीकान्त कहता—नहीं, तुम मेरा हाथ छोड़ दो।

सरयू उसे और भी कसकर पकड़ लेती। बोलती—मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी।

श्रीकान्त का पारा चढ़ा ही रहता। बोलता—क्यों नहीं छोड़ोगी? मैं खटता-खटता मर रहा हूं और बाकी लोग मौज कर रहे हैं। मुझे इसका आज जवाब चाहिए।

सरयू कहती—तुम चुप करो। शान्त हो जाओ। लोग मुझे ही बदनाम करेंगे।

—तुम्हें क्यों बदनाम करेंगे?

—सब यही कहेंगे कि मैंने ही तुम्हें सिखाया है। दुहाई तुम्हारी, किसीको कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं।

और इस तरह बड़ी मुश्किल से सरयू श्रीकान्त को शान्त कर पाती। अत्यन्त शान्त स्वभाव का श्रीकान्त भी थोड़ी देर के लिए गुस्से में पागल हो उठता, पर धीरे-धीरे कीचड़ की तरह नरम पड़ जाता। पहले की तरह खेती-बाड़ी में जुट जाता। घर में उसकी एक ब्याहता पत्नी थी, यह भी भूल जाता।

१६

सरयू की कहानी कोई एक दिन में खत्म नहीं हुई। सरयू की बा

सुनते-सुनते मेरी भी दिव्यदृष्टि खुल गई। कभी किसी एक साधारण-सी लड़की को रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर देखा, और घटनाचक्र से इसी शहर कलकत्ता में दुबारा एक अजीब माहौल में उससे भेंट हो गई। उसके बाद उसे लेकर मैंने एक कहानी भी लिख डाली थी। उस समय लगता था कि उसे देखकर ही उसे पूरी तरह समझ गया था, लेकिन सब कुछ उलट-पलट गया। अब लगता था कि अब तक का मेरा देखना-सुनना-जानना, सब इस खून के मुकदमे में बेकार सिद्ध हो गया। सरयू ने मुझे बेवकूफ साबित कर दिया। उसके आगे मैं हार गया।

हमेशा की तरह इस दिन भी कोर्टरूम में भीड़ थी। जिन्हें बैठने की जगह नहीं मिली, वे पीछे की तरफ खड़े थे।

वकील के प्रश्नों का जवाब सरयू खट-खट देती जा रही थी। उसकी मुद्रा वही थी। सर पर कपड़ा। सर झुकाए। अपनी कहानी में मानो वह अपने सारे जीवन की परिक्रमा कर रही हो। मनुष्य किसी एक घर में पैदा होता है, मां-बाप की स्नेह-छाया में बड़ा होता है, उसके बाद संसार-आश्रम में प्रवेश करता है, और संसार के सुख-दुख में फंसकर एकाएक जीवन के किनारे आ पहुंचता है। और फिर अचानक ही इहलोक का हिसाब चुका-कर परलोक के इष्ट-अनिष्ट की चिन्ता में लग जाता है, यही मनुष्य-जीवन का साधारण-सा नियम है। लेकिन सरयू का जीवन कुछ और ही था। उसकी जीवनधारा की गति बड़ी विचित्र थी।

उस दिन सुबह से ही उसकी एक आंख फड़क रही थी। बचपन में ही सरयू ने यह संस्कार पाल रखा था कि एक आंख फड़कने से कोई अमंगल होता है। श्रीकान्त की नींद सुबह जल्दी खुलती थी, उसे खेत पर जाना होता था। जब से स्वदेशी युग आया, कृषि-कार्य में झमेले भी बढ़ गए थे। प्राणकान्त हालदार के जमाने में ऐसा नहीं था। धान-गेहूं की फसल उगाओ —और साल-भर का अनाज अपने गोदाम में भरकर छुट्टी मनाओ। फिर भारद्वाज तेली की दुकान पर जाकर ताश खेलो, तम्बाकू पियो और ताल से मछली पकड़ो। और घर पर पत्नी हर साल बच्चे पैदा करती रहती।

पर अब युग पलट गया था। कब तो एकाएक हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बन गए, और कब मनुष्य-संख्या पिलपिला कर बढ़ने लगी। कब देखी

युग आया—गांव के लोगों को कुछ पता ही नहीं चला। भारद्वाज तेली जब मरा, प्राणकान्त हालदार उसके श्राद्ध में नहीं गए, क्योंकि उन्हें अपनी मृत्यु की बात सता रही थी। पत्नी से बोले—अब मेरा भी जाने का समय आ गया है।

अश्विनी कुण्डू श्राद्ध का निमन्त्रण देने आया था। बोला—पिताजी से आपकी दोस्ती थी, आप ज़रूर आइएगा।

ज़रूर आऊंगा, तुम चिन्ता मत करो।

लेकिन प्राणकान्त दोस्त के श्राद्ध में नहीं जा सके।

पत्नी ने पूछा भी—क्यों जी, गए नहीं ?

—कहां ?

—क्यों ? कुण्डू जी के श्राद्ध पर ?

प्राणकान्त बोले—मेरे श्राद्ध का भोज कौन खाएगा, उसका तो कोई ठीक नहीं और मैं जाऊं उसका भोज खाने। तुम लोगों की इच्छा हो तो जाओ।

उसी समय से प्राणकान्त ने घर से निकलना छोड़ दिया। चुपचाप घर की चारदीवारी में पड़े रहते और पड़े-पड़े घर के तमाम झंझटों को सुनते रहते। कभी-कभी उनकी इच्छा होती कि वे शशिकान्त का गला ही घोंट दें। लेकिन सामर्थ्य नहीं थी। केवल गिड़गिड़ाते—क्या हो रहा है वहां ? शशि क्या बक रहा है ?

बुड्ढे को कौन जवाब देता ?

प्राणकान्त हालदार शशि को गाली बकते—हरामज़ादे, बेवकूफ। दिन-भर तेली की दुकान पर ताश खेलकर आकर हुकुम चलाता है। पत्नी को भी बुलाते—एक बार इधर आओ न, घर में क्यों इतना शोरगुल हो रहा है ?

पत्नी पास नहीं जाती। बाहर से ही बोलती—बुड्ढे पर सनक सवार है।

लेकिन शशिकान्त को कोई चिन्ता नहीं थी। निर्विकार निरंकुश पुरुष था वह। यात्रा और नाटक के बीच रहकर अन्त में उसने शराब भी पीना शुरू कर दिया था। कई बार रात को नशे में धुत बेहोशी की हालत में

घर पहुंचता।

शशिकान्त की मां सब कुछ जानती, कभी-कभार बेटे को पूछती थी—तू पीता क्यों है, यह गन्दी आदत किससे सीखी?

बेटा इसके उत्तर में नाटक का पार्ट दुहराता—

प्रासाद मेरा है कारागार
विक्षिप्तों का!
गान समझकर उन्मादी की तरह बकता हूं
समय बढ़ता है आगे
अपनी रफ्तार से।
प्यासी हो उठी है तलवार खूंखार
मांगती है खून के बदले खून!

उसकी मां सब कुछ जानकर भी चुप रहती। बेटे को प्रश्रय देती। कहती—इतना चिल्लाकर बातें मत कर शशि। बाबूजी जगे पड़े हैं, सुन लेंगे।

शशि कहता—चिल्लाऊंगा नहीं तो सभा के सारे लोग सुन कैसे पाएंगे।

रात को सरयू श्रीकान्त से कहती—तुम खेती-बारी लेकर ही व्यस्त रहते हो, मुझे इस घर मे रहना अच्छा नहीं लगता।

श्रीकान्त पूछता—क्यों?

—तुम नहीं समझोगे!

—अरे, कहकर भी तो देखो न!

सरयू कहती—किसी-किसी दिन मैं परेशान-सी हो जाती हूं, कहां जाऊं, क्या करूं, कुछ समझ मे नहीं आता। ऐसा ही भाग्य है मेरा कि बाप का घर भी नहीं। यहां तो मैं जल-भुन गई हूं।

—लेकिन तुम किस बात में झुलस रही हो। अगर समझाकर कहोगी नहीं तो मैं आखिर समझूंगा कैसे?

सरयू गुस्सा कर कहती—चुप भी हो जाओ। तुम्हारे जैसे आदमी के हाथों मे पड़कर ही मेरी इतनी दुर्दशा हुई। तुमने मुझसे शादी क्यों की?

श्रीकान्त बोलता— देखो तुम फिर वही बात कह रही हो। यह तो मैं

बहुत बार सुन चुका हूं। लेकिन मैं कर भी क्या सकता हूं, बोलो ! बोलो ! मेरे क्या करने से तुम खुश रह सकती हो, सुखी हो सकती हो ?

—तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। कहकर सरयू या तो कमरे से निकल जाती या फिर उसी समय सास की आवाज़ आती—श्रीकान्त बेटे, तुमसे कोई मिलने आया है। जरूर ज़मीन-सम्बन्धी कोई बात होगी। श्रीकान्त उसी हालत में बाहर चला जाता।

पर उस दिन श्रीकान्त को क्या पता था कि यह जाना उसका आखिरी जाना होगा और सरयू ही क्या जानती थी कि यह आदमी फिर लौटकर नहीं आएगा।

घटना उसी दिन दोपहर को घटी। और दिन की ही भांति शशिकान्त खाने आया था। खाने में उसे बराबर ही जल्दी रहती थी, क्योंकि कुण्डू की दुकान पर ताश की बंटी पत्तियों को वह छोडकर आता था। आज वह आया ही था कि उसकी बड़ी लड़की ने आकर कहा—चार पैसे दीजिए बाबूजी।

—पैसे ? पैसे क्या करेगी ? जा मेरे पास नहीं हैं।

दादी मां ने प्यार से लड़की का नाम लक्ष्मी रखा था। पर नाम लक्ष्मी होने से क्या होता, वह इतनी ज़िद्दी थी कि अगर कोई चीज़ चाहिए तो जब तक उसे हासिल नहीं कर लेती, जीना मुश्किल कर देती थी। लक्ष्मी ज़िद्द पर अड़ी रही—मुझे पैसे चाहिए। आइसक्रीम खाऊंगी।

शशिकान्त खाना खा रहा था। उसे भी गुस्सा आ गया। बोला—कह रहा हूं न कि पैसे नहीं हैं मेरे पास। फिर भी घनघना रही है।

—पैसे मुझे देने ही पड़ेंगे। सबके पिताजी तो पैसे देते हैं।

सास खाना परोस रही थी। बोली—खाने के समय शोर नहीं मचाते, लक्ष्मी। जा, खेल जाकर !

अचानक लक्ष्मी बोल उठी—खाने के समय न कहूं तो किस समय कहूं ? ताश खेलने के लिए तो पिताजी के पास पैसों की कमी नहीं होती ? तब पैसा कहां से आता है ?

शशिकान्त और चुप नहीं रह सका, जूठे हाथ से ही लक्ष्मी को चटा-चट कई थप्पड़ जड़ दिए।

थप्पड़ खाकर लक्ष्मी जमीन पर गिर पड़ी और जोर-जोर से चिल्लाने लगी।

शशिकान्त भी गुस्से में चिल्ला रहा था—इतनी हिम्मत इस छोकरी की? मुझे कहती है, मैं जुआ खेलता हूं? खेलता हूं तो क्या तेरे बाप के पैसे से खेलता हूं? हरामजादी कहीं की! प्राणकान्त अपने कमरे से चिल्लाने लगे—लक्ष्मी क्यों रो रही है? क्या हो गया?

उस समय किसको फुर्सत थी कि बूढ़े आदमी को जवाब देता। सरयू को जेठ के सामने जाने की हिम्मत नहीं थी, फिर भी लक्ष्मी के गिर पड़ने पर सरयू उसे गोद में उठाकर उसे चुप कराना चाह रही थी। लेकिन शशिकान्त इसे सहन नहीं कर सका। बोला—बहू, तुम इस जलील लड़की को छोड़ दो। यह बाप को गाली बकती है, मैं आज उसका खून कर डालूंगा। सास ने सरयू से कहा—लक्ष्मी को तुम अपने कमरे में ले जाओ बहू।

शशिकान्त रास्ता रोककर खड़ा हो गया। इसी बीच बूढ़े ससुर प्राणकान्त किसी तरह लंगड़ाते हुए घटनास्थल पर आ पहुंचे। बोले—इतना हल्ला क्यों मचा रखा है? क्या समझ रखा है अपने को?

शशिकान्त का दिमाग गरम था ही। बोला—मेरा मिजाज चढ़ा हुआ है तो आपको क्या? आप अपने कमरे में जैसे पड़े थे, पड़े रहिए। यहां गिड़गिड़ाने की जरूरत नहीं।

—क्या? तूने इतनी बड़ी बात मुझसे कही? मैं तेरा बाप होता हूं।

शशिकान्त बोला—बाप हैं तो क्या? मुझे खरीद लिया है क्या! मैं अपनी लड़की को जो चाहे कहूं, इसमें आपको क्या!

प्राणकान्त बोले—चुप रहो। किसके साथ किस तरह बात करनी चाहिए, तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं।

—खूब जानता हूं। मुझे शिक्षा देने की जरूरत नहीं।

—क्या कहा!

शशि बोला—जो मैंने कहा वह आपने ठीक ही सुना।

सास अब तक सब कुछ चुपचाप सुन रही थी। अब बोली—शशि, तू चुप कर जा। बूढ़े आदमी के साथ तकरार करने की जरूरत नहीं।

शशि बोला—बुड्ढे से क्या मैं बात करने गया था? बड़ा ह

तो गरजू होकर लड़ने आया है !

प्राणकान्त खड़े-खड़े हांफ रहे थे। लडके की वात सुनकर स्तम्भित हो गए। बोले—शशि, तू इतना गिर गया है मुझे अन्दाज भी नहीं था। मेरा खाकर मुझपर ही गरजता है। तू अभी मेरे घर से निकल जा।

—खबरदार ! जो मेरे शरीर पर हाथ लगाया। शशिकान्त चिल्लाया।

फिर सारा मकान मानो एक क्षण में एक बारूद का गोला बन गया। शान्त और गम्भीर स्वभाव के प्राणकान्त, जिन्होंने कभी ऊंची बोली में किसीसे बात भी नहीं की थी—आज किस दुर्मति से अपने ही आत्मज के सामने खड़े थे। उनकी नंगी छाती की हड्डियां लोहार की धौंकनी की तरह कांप रही थीं। बोले—शशि, तू मेरे घर से निकल जा—अभी तुरन्त ! मैं तुझे इस घर में नहीं रहने दूंगा।

शशि बोला—मैं अलबत्ता यहीं रहूंगा। अपनी खुशी से रहूंगा। मुझे इस घर से निकालने वाले आप कौन होते हैं ?

—तो यह बात है ?

बूढ़े होने पर भी प्राणकान्त उस दिन गुस्से में अधीर हो गए। क्रोध में आकर बेटे की तरफ दौड़े—पर शशि ने उससे पहले ही उन्हें एक धक्का दिया। प्राणकान्त का बूढ़ा शरीर ज़मीन पर जा गिरा—ठीक उसी मुहूर्त्त में श्रीकान्त घर लौटा। खेत से थका-हारा लौटा था। प्यास बुझाने के लिए एक लोटा पानी मांगने ही जा रहा था कि आंगन में नज़र पड़ी। फिर तो उसके दिमाग पर भी खून चढ़ गया। दौडकर बाप को उठाया, फिर शशिकान्त की तरफ देखकर बोला—भैया, यह तुमने क्या किया ! पिताजी को मारा !

—ठीक किया है। अपनी खुशी से पीटा है। कहकर न जाने क्यों शशिकान्त ने कोने में पड़ी एक बर्छी को उठा लिया।

श्रीकान्त बोला—नशे में आकर क्या करने जा रहे हो भैया ! होश खो बैठे हो क्या ?

—क्या कहा तूने !

स्वभाव से चाहे श्रीकान्त कितना ही नरम क्यों न हो, पर वह था

शक्तिशाली पुरुष । उसने झट शशिकान्त के हाथ से बर्छी छीन ली और उस भरी दुपहरी में दोनों आदमियों के बीच हाथापाई होने लगी । उसी छीना-झपटी में वह बर्छी एकाएक शशिकान्त के गले में बिंध गई ।

शशिकान्त के मुंह से 'बाप रे' का एक आर्तनाद निकला ।

उसके बाद धूप से नहाते हुए उस आंगन में जो एक काण्ड हुआ वह बहुत ही अप्रत्याशित और भयावह था । शशिकान्त के अलावा बाकी लोगों ने देखा, शशिकान्त के गले से रक्त की धार निकलकर आंगन की मिट्टी काली कर रही है ।

आधे घण्टे के अन्दर ही डाक्टर आया, और पुलिस भी आई । परन्तु डाक्टर ने शशिकान्त को देखते ही मुंह फेर लिया—वह आधा घण्टा पहले ही मर चुका था ।

१७

उसके बाद ? वकील ने पूछा ।

—उसके बाद राजशाही की अदालत में मेरे पति खून के अपराध में पकड़े गए । हम लोगों की गृहस्थी मटियामेट हो गई । सारी सम्पत्ति, जमीं-बाड़ी मुकदमे में साफ हो गई । परिवार के लोग निराश्रय, निरवलम्ब होकर एक-दूसरे से अलग हो गए । सास-ससुर की मृत्यु मुकदमे के दौरान ही हो गई थी । हम केवल दो रह गए—मैं और मेरा देवर ।

—आपका देवर !

—हां, आसामी निशिकान्त हालदार मेरा देवर है ।

—यह आप क्या कह रही हैं !

निशिकान्त मेरा अपना देवर है । मेरे पति का सहोदर भाई । आज जिसे आप कटघरे में आसामी के रूप में देख रहे हैं वह देवता समान व्यक्ति है । निशिकान्त का उपकार आज मैं भी जिन्दा हूं । आपको नहीं मालूम कि कैसे चरित्र का आदमी है वह । स्कूल-कालेज का प्रतिभावान छात्र, उन्हें आदर्श की बातें करते न दें । मौत का सपना भी '— —

मेरी शादी के समय वह कोलियरी में नौकरी करता था, बाहर ही रहता था। आज हालात ने उसे शराबी बना दिया है, लेकिन किसीने उसे जानने की कोशिश भी नहीं की, समझने की कोशिश नहीं की। गरीबी ही हमारे जीवन के अधःपतन का कारण है। उसी गरीबी को दूर करने के लिए मैं नेपाल से गांजा लाती थी। हमने तस्करी करके पैसा कमाया, ताकि उन पैसों से हम लोग फिर सर उठा सकें। पति को जेल से मुक्ति दिलाने के बाद उसे सुख पहुंचा सकें। लेकिन उस काम में भी बाधा आई। पुलिस के आतंक से माणिकतला में मल्लिक बाबू के बीस रुपये के कमरे में जाकर सर छुपाना पड़ा। सभी यही समझते कि हम पति-पत्नी हैं। हमने अपना रिश्ता दूसरों को नहीं बताया, क्योंकि दुनिया के लोग उसमें आपत्ति उठाते। देवर और भाभी एक मकान में एक ही कमरे में सोते हैं, पर रिश्ते में ज़रा भी मालिन्य नहीं, यह कोई नहीं विश्वास करता।

पर दुर्भाग्य है, मल्लिक बाबू जैसे बुजुर्ग आदमी ने भी हमारी गरीबी का फायदा उठाना चाहा। मल्लिक बाबू से बचने के लिए ही अखबार में विज्ञापन देखकर मैंने दरख्वास्त दी और नौकरी कर ली।

—आपके देवर ने इसपर आपत्ति नहीं की ?—वकील ने पूछा।

—आपत्ति की थी। पर आपत्ति से क्या पेट भर सकता है ? मेरी दशा मेरे देवर से देखी नहीं गई—नौकरी के लिए वह पागलों की तरह घूमता रहा। सोचा था भाभी को लेकर अच्छी तरह सम्मान के साथ जीएगा। पर कौन देता है अनजान गरीब को नौकरी ? दुश्चिन्ता और विपत्तियों के बीच उसका मन बिल्कुल टूट गया।

—मुजरिम अगर आपके देवर हैं तो आप लोग पति-पत्नी का परिचय क्यों देते रहे ?

सरयू बोली—ऐसा नहीं करते तो कोई किराये पर मकान देता ? आ निशिकान्त को छोड़ दीजिए, धर्मावतार ! इस दुनिया में मैंने जो कुछ कि है, पाप ही किया है। पर मेरे पाप का दण्ड मेरे निरपराध देवर को दीजिए। सज़ा मुझे दीजिए !

यह कहते समय सरयू एक ढही हुई दीवार लग रही थी। अब तक संयम मानो बांध नहीं मान रहा था। मुझे लग रहा था जैसे वह बेहोश

जाएगी। लेकिन असीम संयम से वह अपने को खींच ले ही गई।

इसी तरह रोज कचहरी बन्द होने के बाद सरयू [illegible] से [illegible] कोठी में वापस चली आती।

मैं सरयू से बात करना चाहता था।

एक दिन कहा —सरयू, सुनो!

चारों तरफ भीड़ थी, लोग सरयू को करीब से देखने के लिए उत्सुक थे। मेरी आवाज सुनकर उसने पीछे मुड़कर एक बार देखा भी, पर रुकी नहीं। गाड़ी में बैठकर चली गई। [illegible]

गाड़ी मेरे सामने से धूल उड़ाती चली गई।

भीड़-भरी उस सड़क पर मैं निस्तब्ध-सा खड़ा रहा। सोच रहा था — यह क्या हुआ?

मेरे जीवन की सारी रचनाएँ, जीवन की शिक्षा, जीवन की [illegible], एक मामूली लड़की ने एक क्षण में [illegible] कर दिया। [illegible] मैं रिक्त हो गया। असहाय, पराजित-सा खड़ा रहा [illegible] लड़की के आगे।

१८

लेकिन उस समय तक भी मुझे यह नहीं मालूम था कि मेरे लिए और भी विस्मय बाकी है।

दूसरे दिन मैं *कोर्ट-रूम में आगे की बेंच पर जाकर बैठ गया। [illegible]* *[illegible] जज, पेशकार, मुंशी, मुख्तार, वकील, [illegible]* जनता भी थी। सभी चुप थे। *[illegible]* [illegible]

शिष्टों के पालनहारे विचारक हैं।

निशिकान्त हालदार भी रोज़ की भांति पुलिस के पहरे में था। बहुत दिनों का भूखा और जर्जरित। इतने लोगों की क्रूर दृष्टि की चोट से वह और भी कंकाल बन गया था।

पर सरयू के चेहरे पर वैसी ही चमक थी। कौन मानेगा कि यह लड़की किसी दिन किसीकी सहधर्मिणी बनकर किसी गृहस्थी घर की वधू बनकर आई थी और फिर यही लड़की नेपाल की अपरिचित अंधी गलियों में गांजे का मोल-भाव करती होगी। विश्वास नहीं होता था। बड़ी विचित्र है यह दुनिया, और इस विचित्र दुनिया के लोग भी बड़े विचित्र हैं। उनके चरित्र भी बहुत विचित्र हैं।

इस मुकदमे के गवाह नम्बर तीन को आप जानती हैं?— वकील ने पूछा।

—सरयू की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, आंखें मिलीं, पर क्षण-भर के लिए ही। सरयू ने सर पर कपड़ा खींच लिया।

मेरे प्रश्न का जवाब दीजिए, तीसरा गवाह आपके सामने है—उन्हें गौर से देखिए, उन्हें पहचानती हैं।

—पहचानती हूं।

—पुलिस की नजर बचाकर आपने इनके घर शरण भी ली थी?

—हां, मैं पुलिस के डर से भाग आई थी।

—पुलिस से यदि आप इतना डरती थीं तो फिर इतना अन्याय आपने कैसे किया? डर नहीं लगा?

सरयू बोली—जिन विपत्तियों के बीच मैंने जीवन बिताया है—आज किसी भी हालत में डर नहीं लगता। मेरे कारण ही मेरे पति जेल गए। मैं ही हर रोज़ उन्हें परिवार के विरुद्ध उत्तेजित करती थी। आज वह आजीवन कैद की सजा काट रहे हैं। आप मुझे अपने पति के पास भेज दीजिए, मुझे सजा दीजिए ताकि बाकी जीवन कैद में उनका साथ दे सकूं।

—जो पूछा जा रहा है आप उसका जवाब दीजिए। प्रभुदयाल सिंह के यहां जब आपने नौकरी की, आपको मालूम था कि वह अच्छे आदमी नहीं हैं?

—जानती थी। प्रभुदयाल-जैसे दुश्चरित्र आदमी के यहां नौकरी की लज्जा और अपमान ने मेरे देवर के मन में अधिक चोट पहुंचाई। उसने मेरी कमाई के पैसे छुए तक नहीं। जो आदमी गांजे की तस्करी के रुपयों से नशा करता था, उसीने मेरे आज के इन पैसों को छुआ नहीं। उसे जितनी ग्लानि होती, उतना ही अन्तर्दाह होता। वह शराब पीता। शायद सब कुछ सब किसीको भूलना चाहता था। लेकिन विवेक उसे छोड़कर नहीं गया, इसलिए उसने भीख मांगी, लोगों को धोखे में रखकर रुपये उधार लिए।

एक दिन निशिकान्त मेरे पास भी आया, बोला—भाभी यह नौकरी तुम छोड़ दो। कष्ट के दिन काटकर गुजर कर लेंगे। यह सब बातें उसने पहले भी बहुत बार कही थीं, लेकिन मैं सुनना नहीं चाहती थी। मुझे तो एक ही चिन्ता थी। किसी तरह पैसे जोड़ूंगी, पति को जेल से रिहा करवाऊंगी और एक मकान बनवाऊंगी। मुझे उसी दिन की सिर्फ प्रतीक्षा थी।

उस दिन निशिकान्त को देखकर मेरे मालिक प्रभुदयाल सिंह नाराज हुए। उसे अपमानित भी किया। निशिकान्त का अपमान मैं नहीं सह सकी। मैंने प्रभुदयाल को मना किया। निशिकान्त भी गुस्से में आकर प्रभुदयाल को बुरा-भला कहने लगा। दोनों में हाथापाई शुरू हो गई। प्रभुदयाल निशिकान्त को मार रहा था। पास में एक लाठी पड़ी थी, मैंने उसे उठाया और प्रभुदयाल को तब तक मारती रही, जब तक वह बेहोश होकर गिर नहीं पड़ा।

निशिकान्त चौंककर बोला—भाभी, तुमने यह क्या किया? यह आदमी तो मर चुका।

—मरने दो। तुम यहां से भाग जाओ।

—निशिकान्त नहीं भागा। खड़ा रहा, खून के दाग कुछ लग गए थे, कुछ उसने लगा लिए।

नौकर-दरबान दौड़े आए। उसने कहा—प्रभुदयाल को मैंने मारा है। लेकिन खून असल में मैंने ही किया था।

उस दिन भी मुझे लगा कि हम जीवन को कितना कम जानते हैं, किसी-को कितना कम पहचान पाते हैं। एक दिन कोर्ट का फैसला भी सबके को

शिष्टों के पालनहारे विचारक हैं।

निशिकान्त हालदार भी रोज की भांति पुलिस के पहरे में था। वहुत दिनों का भूखा और जर्जरित। इतने लोगों की क्रूर दृष्टि की चोट से वह और भी कंकाल वन गया था।

पर सरयू के चेहरे पर वैसी ही चमक थी। कौन मानेगा कि यह लड़की किसी दिन किसीकी सहधर्मिणी वनकर किसी गृहस्थी घर की वधू बनकर आई थी और फिर यही लड़की नेपाल की अपरिचित अंधी गलियों में गांजे क. मोल-भाव करती होगी। विश्वास नहीं होता था। वड़ी विचित्र है यह दुनिया, और इस विचित्र दुनिया के लोग भी वड़े विचित्र हैं। उनके चरित्र भी वहुत विचित्र हैं।

इस मुकदमे के गवाह नम्वर तीन को आप जानती हैं ?— वकील ने पूछा।

—सरयू की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, आंखें मिलीं, पर क्षण-भर के लिए ही। सरयू ने सर पर कपड़ा खींच लिया।

मेरे प्रश्न का जवाव दीजिए, तीसरा गवाह आपके सामने है—उन्हें गौर से देखिए, उन्हें पहचानती हैं।

—पहचानती हूं।

—पुलिस की नजर वचाकर आपने इनके घर शरण भी ली थी ?

—हां, मैं पुलिस के डर से भाग आई थी।

—पुलिस से यदि आप इतना डरती थीं तो फिर इतना अन्याय आप कैसे किया ? डर नहीं लगा ?

सरयू वोली—जिन विपत्तियों के वीच मैंने जीवन विताया है—अ किसी भी हालत में डर नहीं लगता। मेरे कारण ही मेरे पति जेल गए। ही हर रोज उन्हें परिवार के विरुद्ध उत्तेजित करती थी। आज वह आ वन कैद की सजा काट रहे हैं। आप मुझे अपने पति के पास भेज दीजि मुझे सजा दीजिए ताकि वाकी जीवन कैद में उनका साथ दे सकूं।

—जो पूछा जा रहा है आप उसका जवाव दीजिए। प्रभुदयाल के यहां जव आपने नौकरी की, आपको मालूम था कि वह अच्छे अ नहीं हैं ?

—जानती थी। प्रभुदयाल-जैसे दुश्चरित्र आदमी के यहां नौकरी की लज्जा और अपमान ने मेरे देवर के मन में अधिक चोट पहुंचाई। उसने मेरी कमाई के पैसे छुए तक नहीं। जो आदमी गांजे की तस्करी के रुपयों से नशा करता था, उसीने मेरे आज के इन पैसों को छुआ नहीं। उसे जितनी ग्लानि होती, उतना ही अन्तर्दाह होता। वह शराब पीता। शायद सब कुछ सब किसीको भूलना चाहता था। लेकिन विवेक उसे छोड़कर नहीं गया, इसलिए उसने भीख मांगी, लोगों को धोखे में रखकर रुपये उधार लिए।

एक दिन निशिकान्त मेरे पास भी आया, बोला—भाभी यह नौकरी तुम छोड़ दो। कष्ट के दिन काटकर गुजर कर लेंगे। यह सब बातें उसने पहले भी बहुत बार कही थीं, लेकिन मैं सुनना नहीं चाहती थी। मुझे तो एक ही चिन्ता थी। किसी तरह पैसे जोड़ूंगी, पति को जेल से रिहा करवाऊंगी और एक मकान बनवाऊंगी। मुझे उसी दिन की सिर्फ प्रतीक्षा थी।

उस दिन निशिकान्त को देखकर मेरे मालिक प्रभुदयाल सिंह नाराज हुए। उसे अपमानित भी किया। निशिकान्त का अपमान मैं नहीं सह सकी। मैंने प्रभुदयाल को मना किया। निशिकान्त भी गुस्से में आकर प्रभुदयाल को बुरा-भला कहने लगा। दोनों में हाथापाई शुरू हो गई। प्रभुदयाल निशिकान्त को मार रहा था। पास में एक लाठी पड़ी थी, मैंने उसे उठाया और प्रभुदयाल को तब तक मारती रही, जब तक वह बेहोश होकर गिर नहीं पड़ा।

निशिकान्त चौंककर बोला—भाभी, तुमने यह क्या किया? यह आदमी तो मर चुका।

—मरने दो। तुम यहां से भाग जाओ।

—निशिकान्त नहीं भागा। वहां रहा, खून के दाग कुछ मेरे लग गए थे, कुछ उसने लगा लिए।

नौकर-दरबान दौड़े आए। उसने कहा—प्रभुदयाल को मैंने मारा है।

लेकिन खून असल में मैंने ही किया था।

उस दिन भी मुझे लगा कि हम जीवन को कितना कम जानते हैं, किसी-को कितना कम पहचान पाते हैं। एक दिन कोर्ट का फैसला भी सुनने को

मिला। सरयू को आजीवन कारावास की सजा मिली। सरयू के पति जिस दण्ड को भोग रहे थे और जिस दण्ड की परिसमाप्ति के बाद एक सुन्दर घर और प्रतिष्ठित जीवन का स्वप्न सरयू ने देखा था, आज वही दण्ड सरयू को दिया गया था। जीवन की उम्मीदें पीछे छोड़कर हथकड़ी से बंधी सरयू इस दण्ड को भोगने के लिए कैदखाने के अन्दर चली गई।

एक दिन मन में बड़ी इच्छा हुई कि निशिकान्त से भेंट करूं। उस आदमी को अब तक जैसा सोचता था—बिल्कुल दूसरा ही निकला।

लेकिन उसे देखकर कभी भी मुझे शक नहीं हुआ। मनुष्य-चरित्र पहचानना क्या इतना ही कठिन है? जो आदमी, इतना ईमानदार, सच्चा और महान हो सकता है, वही आदमी फिर शराबी और झूठा भी हो सकता है! मुझे अपने पर धिक्कार हो रहा था। इसी बुद्धि को लेकर अपने को लेखक समझता हूं, अहंकार करता हूं। मैं अपनी ही आंखों में छोटा हो गया।

मुझे लगा, मैंने इतनी किताबें लिखी हैं, किताबों की बिक्री और उनकी प्रशंसा सुनकर मन ही मन खुशी भी हुई है, पर आज एक मामूली-सी लड़की के सामने मेरा सब कुछ धूल में मिल गया। ताज्जुब है गवाह नम्बर तीन के रूप में मैंने ही कहा था—निशिकान्त अपराधी है। लोक-चरित्र के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान कितना कम था।

फैसले के कई दिनों बाद तक मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। अपनी गलती के लिए आत्म-ग्लानि होती थी। ऐसी गलती तो पहले कभी नहीं की थी। सोच रहा था, मल्लिक बाबू या निशिकान्त मुझसे मिलने आएंगे, लेकिन नहीं। वह अवसर भी मुझे नहीं मिला। मल्लिक बाबू के घर का पता भी मालूम नहीं था, नहीं तो स्वयं ही भेंट करने की कोशिश करता।

मैं सोच ही रहा था कि अगर निशिकान्त के साथ भेंट होती तो बड़ा अच्छा होता। इसी समय यह कांड हुआ।

मैंने सोचा इतने दिनों के बाद जब मुलाकात हुई है तब उससे माफी भी मांग लूं। कहूं—निशिकान्त, तुम मुझे माफ कर दो। मैंने हमेशा तुम्हें

गलत समझा। उस दिन कचहरी से निकलने के बाद भी मैंने तुमसे माफी मागनी चाही थी। मैंने तुम्हे बहुत ढूढा भी पर न जाने तुम कहां चले गए।

मैंने देखा निशिकान्त खा तो रहा है पर उसकी आंखों से टप-टप आंसू बह रहे है।

मैंने कहा—यह क्या ? तुम रो रहे हो निशिकान्त ? छि-छि, रोते क्यों हो ? खाना खा लो। एक कटलेट और खाओगे ? दो चॉप और ले लो। पर निशिकान्त ने कोई जवाब नहीं दिया।

मैंने फिर कहा—सच मैं तुम संकोच मत करो निशिकान्त। क्या खाओगे कहो। अगर तुम्हें रुपयो की जरूरत हो तो वह भी कहो। इतना कहकर मैंने अपनी जेब मे जो कुछ था उसे दे दिया। करीब तीस रुपये थे। मैंने कहा—मेरे पास इस समय तो यही है। इसे रख लो और कल मेरे घर आकर और ले जाना। समझे ?

निशिकान्त रुपये नही ले रहा था। मैंने रुपयों को जबर्दस्ती उसकी पाकिट मे डाल दिया और बोला—अब और क्या लोगे, बोलो।

मुह नीचा करके निशिकान्त बोला—नही। और कुछ मैं नही खा सकूगा।

मैंने पूछा—मिठाई खाओगे ?

—नही।—निशिकान्त ने सिर हिलाया।

—दो टोस्ट और लो।

—नहीं।

मैंने सोचा दुकान के अन्दर जाकर देखूं कि वहां और क्या-क्या खाने की चीजें हैं। मैं उठकर अन्दर गया और और भी दो रुपये का सामान मांगा। सोचा—बेचारा निशिकान्त कई दिनो से खाया नहीं होगा। मेरे हाथ पकड़े जाने पर संकोच से कुछ बोल नहीं पा रहा है। निशिकान्त पर मैंने जो अन्याय किया था, उसे खिलाकर कुछ रुपये देकर उसकी कुछ पूर्ति करना चाहता था। खाने की चीजें लेकर जब मैं केबिन के अन्दर गया तो देखा वहां कोई नही था। निशिकान्त मौका पाकर गायब हो गया था। टेबल पर मेरे दिए तीस रुपये पडे थे। उसे न देखकर मुझे डर हुआ कि वह कहीं भाग तो नहीं गया।

मिला। सरयू को आजीवन कारावास की सजा मिली। सरयू के पति जिस दण्ड को भोग रहे थे और जिस दण्ड की परिसमाप्ति के बाद एक सुन्दर घर और प्रतिष्ठित जीवन का स्वप्न सरयू ने देखा था, आज वही दण्ड सरयू को दिया गया था। जीवन की उम्मीदें पीछे छोड़कर हथकड़ी से बंधी सरयू इस दण्ड को भोगने के लिए कैदखाने के अन्दर चली गई।

एक दिन मन में बड़ी इच्छा हुई कि निशिकान्त से भेंट करूं। उस आदमी को अब तक जैसा सोचता था—बिल्कुल दूसरा ही निकला।

लेकिन उसे देखकर कभी भी मुझे शक नहीं हुआ। मनुष्य-चरित्र पहचानना क्या इतना ही कठिन है ? जो आदमी, इतना ईमानदार, सच्चा और महान हो सकता है, वही आदमी फिर शराबी और झूठा भी हो सकता है ! मुझे अपने पर धिक्कार हो रहा था। इसी बुद्धि को लेकर अपने को लेखक समझता हूं, अहंकार करता हूं। मैं अपनी ही आंखों में छोटा हो गया।

मुझे लगा, मैंने इतनी किताबें लिखी हैं, किताबों की बिक्री और उनकी प्रशंसा सुनकर मन ही मन खुशी भी हुई है, पर आज एक मामूली-सी लड़की के सामने मेरा सब कुछ धूल में मिल गया। ताज्जुब है गवाह नम्बर तीन के रूप में मैंने ही कहा था—निशिकान्त अपराधी है। लोक-चरित्र के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान कितना कम था।

फैसले के कई दिनों बाद तक मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था अपनी गलती के लिए आत्म-ग्लानि होती थी। ऐसी गलती तो पहले कभी नहीं की थी। सोच रहा था, मल्लिक बाबू या निशिकान्त मुझसे मिल आएंगे, लेकिन नहीं। वह अवसर भी मुझे नहीं मिला। मल्लिक बाबू के घर का पता भी मालूम नहीं था, नहीं तो स्वयं ही भेंट करने की कोशि करता।

मैं सोच ही रहा था कि अगर निशिकान्त के साथ भेंट होती तो अच्छा होता। उसी समय यह कांड हुआ।

मैंने सोचा इतने दिनों के बाद जब मुलाकात हुई है तब उससे क्षमा भी मांग लूं। कहूं—निशिकान्त, तुम मुझे माफ कर दो। मैंने हमेशा

गलत समझा। उस दिन कचहरी में निकलने के बाद भी मैंने तुमसे माफी मागनी चाही थी। मैंने तुम्हें बहुत ढूंढा भी पर न जाने तुम कहां चले गए।

मैंने देखा निशिकान्त खा तो रहा है पर उसकी आखों से टप-टप आसू बह रहे हैं।

मैंने कहा—यह क्या ? तुम रो रहे हो निशिकान्त ? छि-छिः, रोते क्यों हो ? खाना खा लो। एक कटलेट और खाओगे ? दो चॉप और ले लो। पर निशिकान्त ने कोई जवाब नहीं दिया।

मैंने फिर कहा—सच में तुम संकोच मत करो निशिकान्त। क्या खाओगे कहो। अगर तुम्हें रुपयों की जरूरत हो तो वह भी कहो। इतना कहकर मैंने अपनी जेब में जो कुछ था उसे दे दिया। करीब तीस रुपये थे। मैंने कहा—मेरे पास इस समय तो यही है। इसे रख लो और कल मेरे घर आकर और ले जाना। समझे ?

निशिकान्त रुपये नहीं ले रहा था। मैंने रुपयों को जबर्दस्ती उसकी पाकिट में डाल दिया और बोला—अब और क्या लोगे, बोलो।

मुंह नीचा करके निशिकान्त बोला—नहीं। और कुछ मैं नहीं खा सकूंगा।

मैंने पूछा—मिठाई खाओगे ?

—नहीं।—निशिकान्त ने सिर हिलाया।

—दो टोस्ट और लो।

—नहीं।

मैंने सोचा दुकान के अन्दर जाकर देखूं कि वहां और क्या-क्या खाने की चीजें हैं। मैं उठकर अन्दर गया और और ये दो रुपये का सामान मांगा। सोचा—बेचारा निशिकान्त कई दिनों से खाया नहीं होगा। मेरे हाथ पकड़े जाने पर संकोच से कुछ बोल नहीं पा रहा है। निशिकान्त पर मैंने जो अन्याय किया था, उसे खिलाकर एवं रुपये देकर उसकी कुछ पूर्ति करना चाहता था। खाने की चीजें लेकर जब मैं केबिन के अन्दर गया तो देखा वहां कोई नहीं था। निशिकान्त मौका पाकर गायब हो गया था। टेबल पर मेरे दिए तीस रुपये पड़े थे। उसे न देखकर मुझे शक हुआ कि वह कहीं भाग तो नहीं गया।

केबिन से निकलकर मैंने चारों तरफ नजर दौड़ाया पर ...
हीं नहीं दिखाई पड़ा। मैं वहां बहुत देर तक खड़ा रहा। मैं समझ गया
क मुझसे नजर बचाने के लिए ही निशिकान्त गायब हो गया है और
झसे फिर कभी भेंट नहीं करेगा। वही उससे मेरी आखिरी मुलाकात
ी। उसके बाद एक दिन मेरे घर पर एक अजीब तमाशा हुआ। वही
बताता हूं।

एक दिन किसीने अचानक दरवाजा खटखटाया। मैंने पूछा—कौन ?

—मैं हूं, सर !

मुझे लगा यह आवाज़ निशिकान्त की है। जल्दी से दरवाज़ा खोला। मल्लिक जी खड़े थे। एक हाथ में छाता। मुझे देखते ही सिसक-सिसक-कर रोने लगे।

—अन्दर आइए मल्लिकजी। क्या हुआ है ? रो क्यों रहे हैं ?

—बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं।

—अब क्या मुश्किल आ पड़ी मल्लिक साहब ?

हांफते हुए मल्लिक बोले—आपके उस निशिकान्त को कमरा किराये पर देकर बड़ी भूल की थी, सर। वह मर कर भी मुझे सता गया।

—माने ? क्या हुआ है ?

मल्लिक साहब बोले—आपके निशिकान्त ने फांसी लगा ली है।

—क्या कह रहे हैं ? कब, कहां, किस समय ? यह सब कैसे हुआ ?

—कल। आज सुबह जब मैं गया, वह लटक रहा था। क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आया। इसीलिए भागता हुआ आपके पास आया हूं।

—पुलिस में खबर कर दी है ?

—नहीं, सर ! पुलिस को खबर नहीं की। अन्त में कहीं मुझे ही हथ-कड़ी न पहना दे—इसीलिए तो आपके पास आया हूं। फिर मेरी तरफ असहाय दृष्टि से देखकर बोले—आप भी मेरे साथ चलिए न, सर ! बूढ़ा आदमी हूं। थोड़ी हिम्मत रहेगी।

किसी तरह जूता पहन मल्लिक साहब के साथ, थाने पर गया। पुलि को साथ लेकर मल्लिक बाबू के घर की तरफ चला।

इससे पहले मैं कभी इनके घर नहीं आया था। सच में ही, वह कं

मकान नहीं था। एक डूह था। मिट्टी की दीवार, टीन का छप्पर। बस्ती के और लोग भी तमाशा देखने जुट गए। पुलिस का दारोगा दरवाजा तोड़कर अन्दर घुसा। मैं भी पीछे-पीछे गया। टीन के छप्पर के एक बाम से रस्सी बंधी थी—उसी रस्सी के फन्दो से निशिकान्त का शरीर लटक रहा था। चेहरे पर विकृति नही आई थी, केवल ताजे खून की एक बूंद उसके ओठों पर अटकी हुई थी।

पुलिस ने रस्सी काट दी। निशिकान्त का शरीर धम से जमीन पर गिर पड़ा। पुलिस चारो तरफ की चीजो को ध्यान से देख रही थी। कुछ शराब और सोडा की बोतलें थीं। दो-चार बर्तन, और एक तख्तपोश। उस तख्तपोश पर दरी में लिपटा चद्दर-तकिया पड़ा था। रात को सम्भवत. वह सोया नहीं होगा—केवल शराब पी होगी।

एक जगह से कागज का एक छोटा-सा टुकड़ा मिला। दारोगा बाबू पढ़ने लगे। मैं भी उनके पास जाकर खड़ा हो गया :

'मेरी मृत्यु के लिए कोई उत्तरदायी नहीं है। भाभी को अपमान से बचाने के लिए प्रभुदयालसिंह का खून मैंने ही किया था, फिर भी मैं भाभी को बचा न सका। मेरे अपराध का बोझ भाभी अपने सर लेकर मुझे बचाना चाहती थी। जो दण्ड भाभी ने अपने ऊपर ले लिया—वह मेरा प्राप्य है, इसलिए अपने पाप का प्रायश्चित्त मैं स्वयं कर रहा हूं। भाभी, मुझे माफ करना!

—निशिकान्त हालदार

जमीन पर निशिकान्त का प्राणहीन शरीर पड़ा था। एक मक्खी उसके होंठों पर बैठी थी। जेब से रूमाल निकालकर मैंने उसे उड़ा दिया, लेकिन वह बार-बार मौका पाकर होंठों पर लगे उस सूखे खून पर बैठने लगी।

मैंने मुंह से आवाज की—आ···जा···हू···श···दा···

और सोचता रहा। इसके बाद? इसके बाद क्या?

सोचा देश के ऊपर महादेश है, काल के ऊपर महाकाल है, पर जीवन? क्या जीवन के ऊपर भी कोई जीवन है, जिसका नाम महाजीवन है? अगर वह महाजीवन कहीं है तो वहां भी कोई विचारालय होगा, कोई

विचारपति होंगे और अगर हैं तो उनके विचार का दण्ड किसके सर पर आएगा ? सरयू पर ? निशिकान्त पर ? या फिर आदमी के बने उस समाज पर, जिसमें निशिकान्त और सरयू को रहना पड़ा ?

कौन जानता है ?